Vol. II, Issue XXVIII – August 2017
Article ID # 40102017
Peer–Review Refereed Research Journal

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

श्रीमद्भगवद्गीता में स्वास्थ्य पक्ष

डॉ. महेन्द्र सिंह

प्राचार्य, राजकीय योग शिक्षा एवं स्वास्थ्य महाविद्यालय

सैक्टर–23–ए. चंडीगढ़।

शोध आलेख सार- *श्रीमद्भगवद् गीता मात्र एक ग्रन्थ ही नहीं है बल्कि भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन के माध्यम से सादा जीवन, उच्च विचार का पक्ष रखते हुए योग के द्वारा इसे प्राप्ति का मार्ग भी निर्देशित किया है। आज मनुष्य के भौतिक सुख सुविधाओं के जाल ने जीवन को आरामदायक बनाने के साथ–साथ जटिल भी बना दिया है। केवल भोगवादी और अर्थवादी परम्पराओं का अत्यधिक प्रचार–प्रसार हो रहा है। आधुनिक जीवन तृष्णाओं से भरा हुआ है। आधुनिक जीवन पद्धति की जटिलताओं के कारण तथा अर्थवाद और भौतिकवाद की वृद्धि के कारण अधिकतर मनुष्य मनोरोग से ग्रस्त हैं और पंचभूत व विकृत भौतिक विषय वासनाओं, लोभ, क्रोध, राग, द्वेष आदि तरह–तरह के प्रदूषणों से पंचकोश शरीर आधिव्याधि का शिकार हो गया है। एक तरफ हम भौतिक उन्नति कर रहे हैं, वही दूसरी और नई–नई बीमारियों का जन्म हो रहा है। इस जीवनशैली के दो प्रमुख प्रेरक तत्व हैं अर्थ एवं काम। जीवन की धन्यता को नापने के हमारे मापदण्ड नितांत दोषपूर्ण हो गए हैं। इस कारण दो प्रकार की मानसिक एवं शारीरिक व्याधियाँ उभर कर सामने आती हैं। इस प्रकार की व्याधियों से बचाव के लिए वेदों से लेकर वर्तमान पर्यन्त तक के आध्यात्मिक ग्रन्थों में वर्णन मिलता है। इनमें से सर्वाधिक उपयोगी गीता ही मालूम पड़ता है जहाँ ज्ञान, भक्ति व कर्मयोग के सन्देश के साथ–साथ स्वास्थ्य का पक्ष भी देखने को मिलता है। युद्ध से पूर्व विचलित अर्जुन को भगवान श्रीकृष्ण ने धर्म व अधर्म के द्वारा मानसिक रूप से मजबूत करने के अतिरिक्त स्वास्थ्य संबंधित पक्ष का ज्ञान करवाया है।*

मूल शब्द- श्रीमद्भगवद् गीता, जीवन, स्वास्थ्य

शोध आलेख- सुखमयी जीवन की इच्छा मानव की स्वाभाविक वृत्ति है। जीवन नहीं अपितु जीवन के साथ सुखमयी जीवन का होना आदिकाल से ही महत्त्वपूर्ण माना गया है। जीवन के उद्देश्यों के बारे में अथर्ववेद में कहा है:–

उद्यंम ते पुरुष नावयांन जीवातु ते दक्षतात्तिकृणोभि।

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

अर्थात भगवान मनुष्य को आदेश करते हैं कि अधोगति नहीं, सदा जीवन में उन्नति करते रहो, इसलिए ये जीवन बल प्रदान कर रहा है।[1] इस प्रकार हमारे आध्यात्मिक शास्त्रों ने जीवन के सुखमय पक्ष के पहलू स्वास्थ्य के बारे में भी वर्णन किया है। कहा भी गया है पहला सुख निरोगी काया।''

इस युग में पदार्थ एवं भोगवादी चिंतन चरम पर है। आधुनिकता ने मनुष्य को सुख सुविधाओं से तो परिपूर्ण कर दिया है। परन्तु मानसिक एवं आध्यात्मिक स्तर से मनुष्य स्वयं को रिक्त पाता है। ऐसा मनुष्य स्वयं एवं समाज के लिए घातक सिद्ध हो रहा है। यही कारण है कि भौतिक सम्पन्नता ने व्यक्ति से श्रम को दूर कर दिया है इस कारण जीवनशैली विकृत हो रही है और मनुष्य का स्वास्थ्य कमजोर होता जा रहा है। अनेक शारीरिक व मानसिक व्याधियां पनपने लगी है जैसे कि (1) मानसिक तनाव, विषाद आक्रमकता, पलायनवृत्ति, अल्जाइमर, दौरा, अनिद्रा आदि मनोरोग (2) मोटापा, ब्लडशुगर, रक्तचाप, पाचन दोष, सिरदर्द, हृदयघात, कैन्सर और श्वास सम्बन्धी समस्या आदि शारीरिक व्याधिया।

यद्यपि उपयुक्त शारीरिक एवं मानसिक व्याधियां प्रथम दृष्टयां अधिक जटिल एवं चुनौतीपूर्ण प्रतीत होती है। किन्तु हमारे आध्यात्मिक ग्रन्थों जैसे गीता में जीवन में स्वस्थ किस तरह रहा जा सकता है के मर्म रहस्यों का भी वर्णन मिलता है। सर्वप्रथम हमें श्रीमद्भगवद् गीता आसक्ति रहित कर्म करने का उपदेश देती है अर्थात हमें अपनी जीवनशैली की दिनचर्या में परिवर्तन करना, सही समय पर सही कर्म करना, जो स्वास्थ्य में सहायक सिद्ध हो।

जड़ चेतन सभी को निरोगी होना जरुरी है। पौधे और वृक्ष भी यदि रुग्ण रहे तो शुद्ध फूल और फल नहीं दे सकते। इसलिए निरोगिता सबके लिए अनिवार्य वस्तु है। चेतन प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ मनुष्य को निरोगिता के बारे में कहने की जरूरत नहीं होनी चाहिए क्योंकि स्वस्थ मन और निरोगी शरीर वाला मनुष्य ही मानव जीवन के उद्देश्य को सफलता पूर्वक प्राप्त कर सकता है।

जीर्ण शरीर से जीवात्मा निकल जाने पर इस वर्तमान स्थूल शरीर से तो छुटकारा मिल जाता है,[2] पर मन व्याधिग्रस्त रहने पर जन्म–जन्मान्तर बिगड़ जाता है। व्याधि ग्रस्त मन जीव को अधोगति में ले जाता है। इसी कारण भगवान श्रीकृष्ण ने निरोग – 'ज्वररहित मन से संताप रहित होकर कर्म करने को कहा है।'

चिन्ता, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, आसक्ति मात्सर्य, असहिष्णुता अधैर्य आदि मन की व्याधियां मानी जाती हैं। इनके वशीभूत होना मानसिक व्याधि ग्रस्त होना है। इन्हीं व्याधियों को श्रीकृष्ण ने ज्वर कहा है। जो काम क्रोधादि के वेगों को सहन व दमन कर सकता है वही मनुष्य सुखी व आनन्द में रह सकता है। [3]

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

इन व्याधियों से युक्त रहने वाला मन ही मनुष्य के लिए अहितकारी है और इनसे विपरीत अर्थात इनके वश में न होकर अपने आपको स्वस्थ रखने वाला मन ही मनुष्य का हितकारी है। [4]

आयुर्वेद में स्वास्थ्य की परिभाषा बताई है–

''जिस व्यक्ति के दोष समान हो, अग्नि सम हो, धातुयें भी सम हो तथ मल भी सम हो, शरीर की सभी क्रियायें सन्तुलित क्रिया करें, इसके अतिरिक्त मन, सभी इन्द्रियां तथा आत्मा प्रसन्न हो, वह मनुष्य स्वस्थ कहलाता है।'' [5]

गीता के अनुसार– अधिक खाने वाला, या बिल्कुल कम खाने वाला अधिक सोने वाला या अधिक जागने वाला व्यक्ति योग को नहीं प्राप्त कर सकता। इस दुःख को मिटाने वाले योग को तो युक्तिपूर्वक व्यहवार करने वाला ही सिद्ध कर सकता है। मन के युक्त वस्तु मिली तो ज्यादा ग्रहण करना, मनोवांछित चीज न मिली तो दिन भर कुछ भी न ग्रहण करना। समय पर सोना नहीं, समय पर उठना नहीं, ऐसा व्यक्ति कभी मन की शान्ति – निरोगत्व पाने के योग्य नहीं है। शरीर के साथ मन के स्वास्थ्य लाभ के इच्छुक व्यक्ति को समय पर उचित खान–पान, समय पर सोने जागने और काम करने में संयम से रहना जरुरी है। [6]

प्रकृति ऋतु के अनुकूल नपा तुला और शुद्ध भोजन करने से शरीर स्वस्थ तथा बुद्धि निर्मल होती है।[7] गीता के सत्रहवें अध्याय के विषय में सृष्टि त्रिगुणात्मकता होने से आहार को उपयोग में लाने वाले भी तीन प्रकार के होते हैं – सत्व, रज और तम गुणी स्वभाव वाले। इसी प्रकार अपने–अपने स्वभाव (प्रकृति) के अनुसार ही मनुष्य को आहार अच्छा लगता है तथा उन वस्तुओं के सेवन के परिणाम भी अलग–अलग होते हैं भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

''आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले, रसयुक्त, स्निग्ध (चिकने) एवं मन को स्वभाव से ही प्रिय लगने वाले तथा स्थायी चिर प्रभाव वाले भोजन सात्विक स्वभाव वालों को रुचिकर लगते हैं। अति कडुवा, खट्टा, नमकीन, अत्यधिक उष्ण तीखा, रूग्ण, दाहकारक, दुःख, पीड़ा और रोग पैदा करने वाला भोजन राजसी स्वभाव वालों को अच्छा लगता है। रस रहित, बासी और जूठन आहार तामसी स्वभाव वालो को ही अच्छा लगता है।[8] इस प्रकार से गीता में स्वास्थ्य के विभिन्न पक्ष शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक आदि सामने आते हैं।

गीता में कर्म योग, भक्ति योग व ज्ञान योग के साथ–साथ स्वस्थ शरीर की महत्ता को ध्यान में रखते हुए स्वस्थ रहने के लिए जरुरी मनस्थिति आहार आदि के पक्ष को मजबूती से बतलाया है। जैसा कि कालीदास जी ने कुमारसम्भव में बताया है कि इस शरीर के माध्यम से ही पुरुषार्थ चतुष्टय सम्भव है।[9] क्योंकि प्रत्येक कर्म शरीर माध्यम से ही सम्भव है। गीता को कर्म योग शास्त्र के अतिरिक्त स्वस्थ जीवन जीने के लिए उपयुक्त ग्रन्थ स्वीकार किया जा सकता है।

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

संदर्भ सूची-

1. अथर्ववेद 8–1–6

2. तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यानि
संयति नवानि देहीं।। श्रीमद्भगवद्गीता 2/22

3. युध्यस्व विगत ज्वरः। (गीता 3/30)
शक्नोतिहैव यः सोढ़ुं प्राक्शहीर विमाक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः।। गीता 5/23

4. बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शतुत्वे वर्तेतात्मैव शतुवत्।। गीता 6/6

5. समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियाः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थः इत्यभिधीयते।। सुश्रुत संहिता 24/6

6. नात्यश्नतस्तु योगोऽसित न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्रशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।।
युक्ताहारबिहारस्य युक्तचेष्टस्थ कर्मसु।
युक्तस्वप्रावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।। गीता 6/16–17

7. आहार शुद्धौ सत्वशुद्धिः। (छान्दोग्य 7/26/2)

8. आयुः सत्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्या स्न्त्रिन्धाः स्थिरा ह्द्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः।।
कट्वम्ललवणात्युष्णती द्वणरूक्षविदाहिनः।
यातयामं गतरसं पूति पर्युश्ज्ञितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भेजनं तामसप्रियम्।। गीता 17/8–10

9. शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्। कुमार सम्भव 5/44

Vol. II, Issue XXVIII – August 2017
Article ID # 40202017
Peer–Review Refereed Research Journal
ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

हरियाणवी फिल्मों में महिलाओं एवं संस्कृति का चरित्र–चित्रण

डा. सेवा सिंह बाजवा
सहायक प्राध्यापक
चौ. देवीलाल विश्वविद्यालय, सिरसा
ई–मेल–nachizbajwa@gmail.com

परिचय- *परंपराएं एवं संस्कृति किसी भी समाज की धरोहर होती है। परंपराएं जितनी सुदृढ़ होगी उतनी ही उस समाज में नैतिक मूल्यों की जड़ें मजबूत होंगी। संस्कृति किसी विशेष समाज के लोगों के जीवनयापन करने की कला है। जिसमें समाज के राजनैतिक, बोद्धिक, आर्थिक, भाषायी और सामाजिक पहलू शामिल होते हैं। संस्कृति को परंपराओं से पृथक नहीं किया जा सकता क्योंकि पंरपराएं समाज की सभी रीतियों एवं मर्यादाओं का आधार बनती है किसी भी समाज में लोगों का रहन सहन, खान–पान, पहनावा, रोजगार के साधन, भवन निर्माण कला, बोली एवं सामाजिक सरोकार वहां की परंपराओं से अत्याधिक प्रभावित होते हैं। उदाहरण स्वरूप हरियाणा प्रदेश के मूल निवासियों की बोली, रीति रिवाज, खानपान सामाजिक मापदंड, खेल–कूद एवं ललित कलाएं देश के अन्य प्रदेशों से बिलकुल भिन्न है। हरियाणवी अर्थव्यवस्था मूलतः कृषि पर आधारित है इसलिए यहां की संस्कृति में किसानों, खेत तथा उनकी बेबाक रौबदार बोली अपना अनूठा स्थान रखती है। खेल–कूद में कबड्डी, मुक्केबाजी तथा कुश्ती के क्षेत्र में हरियाण लाजवाब है। दूध दही से बने हरियाणवी खाने का जायका और कहीं नहीं मिलता। हरियाणवी रागनियां तथा संवाग अपने ही ढंग से पारंपरिक मूल्यों तथा अप्रकाशित हरियाणवी साहित्य को जिंदा रख रहे हैं।*

जन संचार माध्यम के रूप में फिल्में:

विद्युत जनसंचार माध्यमों में सर्वप्रथम चलचित्रों का प्रचलन प्रारंभ हुआ वर्ष 1895 में चलचित्रों के पहले प्रदर्शन के पश्चात समस्त विश्व में फिल्म निर्माण शुरू हुआ। प्रारंभिक वर्षों में मूक फिल्मों के दौर के बाद भारत में वर्ष 1931 में अर्देशित इरानी द्वारा निर्मित फिल्म 'आलम आरा' से बोलती हुई फिल्मों का दौर शुरू हुआ इसी दशक में भारत की लगभग सभी प्रमुख भाषाओं में फिल्म निर्माण शुरू हुआ। रंगमंच को कैमरे के माध्यम से रिकॉर्ड कर उसे बड़े पर्दे पर दिखाने की कला फिल्में कहलाती है। थियेटर के अंधेरे में बड़े पर्दे पर दिखाई जाने वाली फिल्मों के माध्यम से चयनित विषय विशेष को अत्याधिक प्रभावशाली ढंग से लोगों के समकक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है। फिल्म की कहनी के अनुरूप किरदारों की वेशभूषा, संवाद एवं

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

आदाकारी कहानी को नाटकीय रूपांतर के रूप में प्रस्तुत करते है। जिससे लोगों को मनोरंजन के साथ–साथ जानकारी भी प्राप्त होती है। भले ही बॉलीवुड की मशाला फिल्मों के इस दौरा में फिल्में मनोरंजन मात्र का साधन बनकर रह गई हैं लेकिन समानांतर सिनेमा में अभी भी लोगों की सामाजिक, आर्थिक, मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं से ओत–प्रोत विषयों पर चौकी फिल्मों का निर्माण होता है। व्यवसायिक सिनेमा में भी यदाकदा संदेशात्मक फिल्में बनती रही हैं। समाज में सदगुणों के विकास तथा नई सोच के संचार हेतू फिल्मों का अनूठा योगदान रहा है।

हरियाणवी सिनेमाः

हरियाणा प्रदेश का गठन संयुक्त पंजाब के बंटवारे के बाद 1 नवंबर 1966 को हुआ। हरियाणा को बंजर भूमि, आम गरीबी, पानी की किल्लत तथा सामाजिक आर्थिक पिछड़ापन विरासत में मिला। इन समस्याओं से जूझते हुए आर्थिक विकास तथा लोगों की समस्याओं का निदान करना प्रमुख लक्ष्य रहा जिसके फलस्वरूप हरियाणवी फिल्मों का निर्माण मंद रफ्तार से शुरू हुआ। हरियाणवी भाषा में प्रथम फिल्म 'धरती' वर्ष 1968 में बनी। धरती से लेकर पगड़ी तक हरियाणवी भाषा में कुल 42 फिल्मों का निर्माण हुआ है, जिनमें से चंद फिल्में अपनी अलग पहचान बनाने में कामयाब रही जबकि ज्यदातर फिल्में विषय तथा फिल्म तकनीक के निम्न स्तर के चलते आयी–गई हो गई। हरियाणा की चर्चित फिल्मों में 1982 में बनी बहू रानी, 1984 में निर्मित चंद्रावल, वर्ष 2000 में निर्मित लाडो और 2014 में बनी पगड़ी–दा ओनर शामिल हैं। हरियाणवी फिल्में ज्यादातर जर–जोरू और जमीन के इर्द गिर्द घूमते विषयों पर केंद्रीत रही है तथा इनमें सामाजिक सरोकारों की अनदेखी होती रही है। सामाजिक मुद्दों पर हरियाणवी में नाममात्र फिल्मों का निर्माण हुआ जबकि अंतरजातिय प्रेम प्रसंगों और विवाह पर कुछ फिल्में अवश्य बनी।

परिकल्पनाएंः

हरियाणवी में नारी चेतना से संबंधित बहुत कम फिल्मों का निर्माण हुआ है।

हरियाणवी फिल्में जर–जोरू और जमीन पर केंद्रीत रहती है।

हरियाणवी फिल्में यहां की संस्कृति की कुशल पेशकारी नहीं करती।

हरियाणवी फिल्मों का निर्माण एवं प्रदर्शन देशवाली क्षेत्र तक ही सीमित है।

उद्देश्यः

हरियाणवी फिल्मों में दिखाए गए सांस्कृतिक अंशों का अध्ययन करना।

हरियाणवी फिल्मों के विषयों का अध्ययन करना।

हरियाणवी फिल्मों में नारी के प्रस्तुतिकरण को जानना।

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

शोध पद्धतिः

इस शोध कार्य हेतू 4 हरियाणवीं फिल्मों (बहू रानी, चंद्रावल, लोडो एवं पगड़ी) का चयन किया गया है तथा संदेश विश्लेषण शोध पद्धति के माध्यम से फिल्मों का अवलोकन करते हुए आंकड़े एकत्र किए गए हैं। गुणात्मक अनुसंधान हेतू इस शोध के लिए वर्णानात्मक अभिकल्पना का उपयोग किया गया है।

आंकड़ा प्रस्तुतिकरणः

बहू रानीः वर्ष 1982 में प्रदर्शित फिल्म बहू रानी तेलुगु भाषा की फिल्म अर्धांगिनी का पुनःनिर्माण था जो एक बंगाली उपन्यास पर आधारित थी। टी. प्रकाशराव द्वारा निर्मित इस फिल्म में गुरूदत्त, माला सिंहा, फिरोज खान, ललिता पंवार तथा नासिर हुसैन प्रमुख भूमिका में नजर आए। यह फिल्म एक जमींदार परिवार के दो बेटों रघु एवं विक्रम पर आधारित है। रघु जमींदार की पहली पत्नी का बेटा है जबकि विक्रम दूसरी पत्नी की औलाद है। इस फिल्म में रघु का गांव की ही एक लड़की पदमा (माला सिंहा) से प्रेम दिखाया गया है जिसके पश्चात दोनों की शादी हो जाती है। यह फिल्म पूर्णतः एक प्रेम प्रसंग है जिसमें फिल्म की नायिका को बेखौफ होकर अपने प्रेमी–पति को समाज से लोहा लेने के लिए प्रेरित करते दिखाया गया है।

चंद्रावलः वर्ष 1984 में श्रीदेवी शंकर प्रभाकर द्वारा लिखित, उषा शर्मा द्वारा प्रस्तुत तथा जयंत प्रभाकर द्वारा निर्देशित फिल्म चंद्रावल अपने समय की सर्वाधिक चर्चित तथा व्यवसाय करने वाली फिल्म रही। यह फिल्म लोहार कबीले की एक लड़की चंद्रावल के जाट बिरादरी के एक लड़के सूरज के साथ प्रेम की दुखांत कथा पर आधारित है। रामगढ़ गांव की इस कहानी में चौधरी रंजीत का बेटा सूरज नृत्य करती चंद्रावल को देखते ही दिल दे बैठता है दोनों का प्रथम दृष्टि प्रेम हो जाता है। यह बात सीघ्र ही सभी को मालूम हो जाती है तथा सूरज के पिता रंजीत चौधरी को ये प्रेम कदाचित स्वीकार्य नहीं होता। उधर जोधा सरदार अपनी बेटी चंद्रावल को लेकर रंजीत चौधरी की हवेली से चला जाता है ताकि चंद्रावल तथा सूरज पुनः एक दूसरे को मिल ना पाएं। काफी समय के पश्चात सूरज चंद्रवाल को उसके डेरे पर देखता है तथा दोनों भावुक होकर एक–दूसरे को मिलने का प्रयास करते हैं यह देखते हुए जोधा सरदार गुस्से में लाल–पीला हो जाता है तथा चंद्रावल को मारने हेतू छुरा उसकी तरफ फेंकता है लेकिन सूरज उसे बचाने के लिए आगे आ जाता है जिससे छुरा उसके लग जाता है। इसके बाद चंद्रवाल उसी छुरे को निकालकर अपने प्रेमी के विरह में उससे अपना बलिदान दे देती है। इस प्रकार दोनों की मौत हो जाती है। फिल्म के लगभग सभी गीत हरियाणवी संस्कृति से ओत प्रोत हैं तथा मानवीय भावों की अभिव्यक्ति करते हैं।

लाडोः वर्ष 2000 में अश्विनी चौधरी द्वारा निर्देशित फिल्म लाडो एक नवविवाहित दुल्हन उर्मी की कहानी है जिसको उसका पति अरविंद अपने परिवार के पास छोड़कर शहर में नौकरी करने चला जाता है और उसके ससुराल वाले उसे बच्चे के लिए परेशान करना शुरू कर देते हैं। पति की अनदेखी से पीड़ित उर्मी

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

को अपने देवर इंद्र से प्रेम हो जाता है। दोनों के प्रेम की लुका–छीपी प्रेम संबंधों में बदल जाती है। जल्द ही रात के अंधेरे में पनपते उनके संबंध जगजाहिर हो जाते हैं। गांव की पंचायत के सामने उर्मी ससुराल पक्ष की प्रताड़ना तथा प्रेमी की कायरता का शिकार होती है अंततः पंचायत उसे दोषी करार देती है लेकिन उसके पति की अनदेखी तथा प्रेमी की कायरता को नजरअंदाज कर देती है। इस तरह लाडो को पुरुष प्रधान समाज में पुरुषों के कायदे कानूनों का शिकार होना पड़ता है।

पगड़ी– दा ऑनरः राजीव भाटिया की फिल्म पगड़ी– दा ऑनर पुरुष प्रधान समाज में सामाजिक प्रतिष्ठा तथा गौरव हत्या (ऑनर किलिंग) की कहानी पर आधारित है। यह फिल्म अंतरजातिय विवाह के संताप की कहानी है। जिसमें मां–बाप सामाजिक दबाव की अनदेखी करते हुए अपने बच्चों इच्छाओं के अनुरूप उनके अंतरजातिय विवाह करने पर राजी हो जाते हैं। फिल्म का शिर्षक हरियाणा के सामाजिक आर्थिक ढांचे में बच्चों की इच्छाओं के सामने परिवार की आबरू का प्रतीक है। फिल्म में मांगें राम की भूमिका में रवि चौहान तथा इमृति देवी की भूमिका में बलजिंद्र कौर अदाकारी बेहतरीन रही। इस फिल्म के लिए बलजिंद्र कौर को सर्वश्रेष्ठ हरियाणवी अभिनेत्री का राष्ट्रीय पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है।

सारांशः चयनित हरियाणवी फिल्मों की चर्चा के उपरांत यह स्पष्ट होता है कि हरियाणवी की बहु चर्चित फिल्में प्रेम प्रसंगों पर आधारित हैं। इनमें जुदाई की व्याकुलता, पति की अनदेखी का सितम, अधूरी इच्छाओं की सिसकियां तथा अंतरजातिय प्रेम के रास्ते में आने वाले सामाजिक बंधनों की अभिव्यक्ति मिलती है। जहां उर्मी को अपने पति की उदासीनता तथा प्रेमी की कायरता सहनी पड़ती है वहीं चंद्रावल अंतरजातिय प्रेम से खफा अपने अपने पिता के खंजर से जान प्राण त्याग देती है। बहू रानी की पदमा एक सशक्त महिला का प्रतिनिधित्व करती है जो बेखौफ होकर अपने डरपोक प्रेमी को समाज से लोहा लेने में सहायता करती है। पकड़ी की इमृति देवी अपने मां–बाप को सामाजिक दबाव के विपरीत अंतरजातिय विवाह के लिए तैयार करने में सक्षम है। इस तरह हरियाणवी फिल्में महिला सशक्तिकरण से बहुत दूर हैं तथा अभी भी पुरुष प्रधान समाज में गुलाम मानसिकता से पीड़ित है। सांस्कृति अंशों की बात करें तो इन फिल्मों में हरियाणवी बोली, किसानों के जीवन, ग्रामीण जीवन, हरियाणवी पहनावा, खानपान तथा हरियाणवी समाज के मूल्यों की सुदृढ़ अभिव्यक्ति मिलती है।

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

Vol. II, Issue XXVIII – August 2017 ISSN No. 2395-6941
Article ID # 40302017 Website: http://www.umrjournal.com/
Peer–Review Refereed Research Journal

टेलीविजन समाचार चैनलों की भाषा : एक अध्ययन

डा. योगेश कुमार गुप्ता
सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
निम्स विश्वविद्यालय, जयपुर

प्रस्तावना– *भारत में टेलीविजन के निजी चैनलों की शुरूआत के बाद जब जी टीवी रात दस बजे की खबरें प्रसारित करता था तो उस समय उसकी भाषा हिंग्लिश हुआ करती थी। तब जी टीवी के साथ स्टार टीवी की पूंजी लगी हुई थी। इस तरह यह भाषा पूंजी और बाजार की जरूरत बताई गई थी। माना यह जाता था कि भारत में टेलीविजन समाचारों का एक ऐसा मध्यम वर्गीय दर्शक है जो केवल हिन्दी या अंग्रेजी के बजाय दोनों भाषाओं के मिश्रण का ही अपने दैनिक जीवन में सहजता से इस्तेमाल करता है। दरअसल, बाजार तरह–तरह के प्रयोग करता है, इसलिए भाषा को लेकर कई तरह के प्रयोग सामने आए। बिजनिस इंडिया ग्रुप ने जब भारत में पहला चौबीस घंटे के समाचारों का चैनल शुरू किया तो आधे घंटे के बुलेटिन के लिए एक साथ दो एंकर बैठते थे जिसमें एक अंग्रेजी और दूसरा हिन्दी का होता था। हिन्दी क्षेत्र की कुछ खबरें हिन्दी में पढ़ी जाती थीं। वह भी अंग्रेजी से अनूदित होकर तैयार की जाती थीं, लेकिन विकास के क्रम में हिन्दी की अलग बुलेटिन पढ़ी जाने लगी जो हिन्दी के चौबीस घंटे के नए–नए समाचार चैनलों के विस्तार के रूप में दिखाई पड़ती थी। अब रूपर्ड मर्डाक के बाद के सहयोगी एनडीटीवी के मालिक प्रणव राय से लेकर खुद रूपर्ड मर्डाक तक ने स्टार टीवी के नाम से हिन्दी समाचार चैनल खोल लिया है। सभी भाषा का अपना एक चरित्र होता है और यह उस भाषा के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक आधार पर बनता है। इसमें दोराय नहीं है कि आज भारत में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर हिन्दी का वर्चस्व है, इसलिए इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के विकास के साथ इस भाषा का भी चरित्र साथ–साथ सक्रिय है। हिन्दी चैनलों के प्रमुख पदों पर ज्यादातर अंग्रेजी पत्रकारिता की पृष्ठभूमि वाले लोग भले ही हों, लेकिन उसमें काम करने वाले ज्यादातर लोग हिन्दी प्रिंट मीडिया से ही आए हैं, इसलिए हिन्दी प्रिंट मीडिया का जो चरित्र रहा है, उस तरह के प्रभाव से भी चैनल बच नहीं सकते हैं।*

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में भाषा की स्थितिः जब भारत को दुनिया का सबसे बड़ा बाजार बनाने की तैयारी शुरू की जा रही थी, उसी के साथ इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के विस्तार की भी योजना शुरू हुई। बाजार तमाम बड़ी भारतीय भाषाओं के मध्यवर्ग को अपना निशाना बनाए हुए था, जिसमें हिन्दी का विस्तृत क्षेत्र होने के कारण उसके लिए सबसे प्रमुख रही है।

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

हिन्दी का मध्यवर्ग अपने पुराने तमाम संबंधों को नए रूप में देखना चाहता है, यह सोच बाजार की रही है। बशर्ते बाजार उसका एक अभिजन रूप प्रस्तुत करने में सफल हो जाए। टेलीविजन के धारावाहिकों ने यहां की माटी और गंध पर खडे साहित्य और जन संस्कृति को कभी अपना आधार बनाने की कोशिश ही नहीं की। वह उनमें बराबर खतरा महसूस करता रहा।

इसी तरह से समाचारों के चैनलों का भी अध्ययन किया जा सकता है। चैनलों पर हिन्दी के बढ़ते वर्चस्व के साथ ही समाचार बुलेटिन मनोरंजक होने से लेकर अपराध कथाओं की तरफ तेजी से मुड़ते चले गए हैं। यानी विषय को लेकर हिन्दी के बुलेटिन सीएनएन का बीबीसी की तरह गंभीरता की तरफ कभी बढ़ते दिखाई नहीं देते हैं। समाचार चैनलों में एक दूसरे से बाजी मार लेने के क्रम में जो कार्यक्रम हाल में सफल होने का दावा करते हैं, उनमें जी टीवी के स्टूडियो में गर्भवती गुडिया के लिए पंचायत से लेकर गुप्त कैमरे के जरिए स्टार टीवी में पांच लाख रूपये में नामी–गिरामी अभिनेत्री महिला की जिस्म फरोशी के लिए खरीददारी तक के कार्यक्रम शामिल हैं। अभी चैनलों में जिस तरह से अपराध कार्यक्रमों की बाढ़ सी आई है, वह हिन्दी में सर्वाधिक बिकने वाली पत्रिका मनोहर कहानियां की कहानी को दोहराती ही नजर आती है।

समाचार में रोमांच, सनसनी, रहस्य, सेक्स का बढ़ता प्रभाव यह बताता है कि कैसे किसी भाषा का चरित्र उसका पीछा नहीं छोडता है। सीएनएन और बीबीसी की ब्रेकिंग न्यूज या एक्सक्लूसिव के मुकाबले हिन्दी चैनलों का ब्रेकिंग न्यूज राजस्थान के किसी इलाके के किसी डाकू के आत्मसमर्पण तक आकर सिमटा है या फिर एक्सक्लूसिव खबर किसी नकाबपोश के साथ साक्षात्कार में तब्दील होते दिखाई देती है। यहां तो यह तक देखा गया है कि सबसे तेज चलने वाले चैनल ने इस तरह की एक्सक्लूसिव खबर परोसने के लिए अपने स्टूडियो में मेकअप मैन को ही नकाब पहनाकर उसकी बाईट ले ली। खबरें निकालना नहीं, बल्कि बनाने की कोशिश में ये चैनल रहते हैं, इसलिए कभी शत्रुघन सिन्हा के हमशक्ल को उसे केन्द्रीय मंत्री बनाकर संसद भवन में भेजने का सौदा करते हैं तो कभी रेल्वे स्टेशनों पर घंटों कोई बैग रखकर सुरक्षा व्यवस्था को कमजोर बताने की खबर तैयार करते हैं।

भारत मे तरह–तरह के नए चैनल खुल रहे हैं। समाचार चैनलों से लेकर अब अंग्रेजी की तरह हिन्दी में भी आर्थिक समाचारों में तरह–तरह के नए चैनल खुल रहे हैं। कई क्षेत्रीय चैनल भी हैं। दिल्ली के लिए अलग तो राजस्थान, बिहार, उत्तर प्रदेश और दूसरे राज्यों के लिए अगल–अलग, लेकिन इन चैनलों के लिए मध्यम वर्ग का बाजार प्रमुख बना हुआ है। इसीलिए वे जो दर्शक वर्ग तैयार हुए हैं, उसमें ही ज्यादा से ज्यादा हिस्सा हड़पने की तैयारी में लगे रहते हैं। नतीजतन, एक दूसरे की होड में एक दूसरे की नकल में

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

लग जाते हैं। भारत में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के विकास के साथ ही कुछ बुनियादी गड़बड़ियां रही हैं, लेकिन उसे दुरूस्त करने की कोई कोशिश करता दिखाई नहीं देता जबकि वहीं एक केन्द्र है जहां भारतीय इलेक्ट्रॉनिक मीडिया अपने मानक तय कर सकता है। अपने सौन्दर्यबोध के साथ उसके विकास की संभावना है। अपनी जन संस्कृति के कुंआ का मुंह वहीं बंद है। अब यह स्थिति हो गई है कि चैनलों के बीच एक कोरीडोर बन गया है जिसमें एक ही तरह के लोग एक चैनल से दूसरे चैनल तक रेंगते या सरकते रहते हैं और अपने साथ एक तरह की संस्कृति को इधर–उधर करते रहते हैं। ऐसे चैनल बाजार में स्तम्भ तो हो सकते हैं, लेकिन लोकतंत्र के लिए नहीं।

भाषा को ब्रांड के रूप में पेश करने की पहली कोशिश टेलीविजन की दुनिया में 'आजतक' में एसपी सिंह और उनके साथियों ने की थी। वे इस मामले में कामयाब भी हुए थे और बहुत हद तक वे टीवी समाचारों को जनता की भाषा के करीब ले आए थे। इस सफलता का भी यही कारण है कि एस.पी. सिंह की कोशिश में भाषा को ब्रांड बनाने की तमन्ना उतनी नहीं थी जितनी खबरों की भाषा को सहज और सरल बनाने की थी। ब्रांड तो वह फोकट में बन गई और बाकी चैनलों ने उसकी नकल या सकारात्मक शब्दों में कहें तो अनुसरण करना शुरू कर दिया।

एसपी सिंह की सफलता का दूसरा कारण यह था कि वह नवभारत टाइम्स से अनुभवी पत्रकारों का एक दल अपने साथ 'आजतक' में लाए थे। और भाषा पर उनकी पकड़ बहुत अच्छी थी। अखबार की दुनिया में रहते हुए उन्होंने दूरदर्शनी भाषा को बहुत खीझते हुए देखा था और उस बेरूखी और जनता की समझ से परे की भाषा को बदलने की तमन्ना उनमें थी। उनकी सफलता का तीसरा और अंतिम कारण यह भी था कि टेलीविजन माध्यम ही बोलने का है, लिखने का नहीं। वहां बोला गया कोई भी शब्द हवा में गायब हो जाता है और उसकी छाप किसी कागज पर नहीं पड़ती, लिहाजा पर्दे पर बोला गया हर शब्द आसानी से लोगों में खप गया। एसपी सिंह की बोलचाल की भाषा वास्तव में बोलचाल की हिन्दी थी। यह फर्क बाद में मिट गया। बोलचाल की कोई भी भाषा लिखनी है या बोलचाल की हिन्दी लिखनी हैं, यह हम निरंतर भूलते गए।

टेलीविजन की दुनिया ने ही बोलचाल की हिन्दी को बोलचाल की हिंग्लिश बनाने की नाकाम कोशिश की लेकिन उन्हें इसके लिए माफ किया जा सकता है। इस क्षमादान का एक ठोस कारण है। अज्ञानता या बचपने को हमेशा माफ कर देना चाहिए। दरअसल, समाचार चैनलों की हिन्दी खबरों में अंग्रेजी का घालमेल अज्ञानता का नतीजा था। 'आजतक' हिन्दी चैनल की सफलता के बाद अंग्रेजी में खबर प्रसारित करने वाले दूसरे चैनलों को अचानक हिन्दी खबरों का चैनल फायदेमंद लगा और उन्होंने अपने पास उपलब्ध अंग्रेजी पत्रकारों को हिन्दी चैनलों में उतार दिया और अंग्रेजी पत्रकार आनन–फानन में हिन्दी चैनलों में घुस गए,

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

जिसका परिणाम स्पष्ट है। ग्लैमर के मारे अंग्रेजी पत्रकारों ने हिन्दी चैनलों को अपनाना शुरू कर दिया। टीवी के पर्दे पर ग्लैमर की दरकार तो पहले ही थी।

राजस्थान, बिहार, मध्य प्रदेश और उत्तरांचल के सुदूरवर्ती इलाकों से एड़ी घिसकर पत्रकारिता की दुनिया में आगे पहुंचे हिन्दी पत्रकार खबर लिखना तो जानते थे लेकिन टीवी सेट पर उनकी छवि अच्छी लगेगी यह मानने को कोई तैयार नहीं था। (मनोरंजन भारती और दीपक चौरसिया के इस खांटीपन को भी चैनलों ने भुनाया और भाषा की 'पोजिशनिंग' की तरह व्यक्तियों की पोजिशनिंग के रूप में उनका इस्तेमाल बखूबी किया गया।) दूसरी ओर अंग्रेजी के पत्रकार आसानी से टीवी के पर्दे के लायक थे ही। लेकिन उनके सामने मजबूरी यह थी कि हिन्दी के लोगों को खबरें सुनानी हैं जिसका उन्हें सीमित ज्ञान था या उतना ही था जितना वे डीटीसी की बसों में टिकट लेते समय या सब्जी मंडी में सब्जी खरीदते समय किया करते थे। (भाया टू रूपीज के टू टिकट देना सर, ये आलू कितने रूपये केजी है) टिकट वालों को टिकट देना था और सब्जी बेचने वालों को आलू देने थे, लिहाजा उन्हें इस भाषा पर एतराज क्यों होना था?2

'आजतक' के न्यूज डायरेक्टर कमर वहीद नकवी ने बताया कि टेलीविजन समाचार चैनलों की भाषा बहुत ज्वलंत मुद्दा है और बहुत दिनों से इस पर बात की जरूरत, महसूस की जाती रही थी। ये दुर्भाग्य की बात है कि हमारे यहां हिन्दी पत्रकारिता जो हो रही है चाहे अखबारों में, चाहे इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में, हमने ये जरूरत महसूस नहीं की। चार–पांच साल से इसकी जरूरत महसूस की जाती रही है। हिन्दी को ले करके दुविधा रही। हिन्दी कैसी होनी चाहिए, खासतौर पर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के लिए। सबसे बड़ी चीज ये है कि हिन्दी भाषा पर बात शुरू करते हैं तो हम ये देखते हैं कि हिन्दुस्तानी टेलीविजन में जो समाचार चैनल है, उनमें हिन्दी की स्थिति आज कोई बहुत अच्छी नहीं है और इसके यहां पर ऐतिहासिक कारण भी रहे है।

टीवी के आने के बाद ये स्थिति अचानक से बदल गई। टीवी चैनल चलाने वाले लोगों को अचनाक से एक नये सच का पता चला कि हिन्दी के बगैर तो आप टीवी के बाजार को पकड़ ही नहीं सकते हो। जब मनोरंजन के जी टीवी और सोनी जैसे चैनल लोकप्रिय हुए तो स्टार प्लस को स्वतः अपना हिन्दीकरण करना पड़ गया तथा समझ में भी आ गया कि निरी अंग्रेजी का स्टारप्लस तो इस देश में चल ही नहीं सकता और चाहे जो कार्यक्रम दिखाओ, जो चाहे जिस तरह की चीजें, जो जितना बोल्ड एंड ब्युटीफुल दिखाओगे वो चलेगा। इस देश में तो हिन्दी चलेगी।

टीवी पर ये एक नई खोज थी और ये बाजार का दबाव था जिसने स्टारप्लस को अंग्रेजी छोड़कर हिन्दी को अपनाने पर मजबूर कर दिया, तो वहां से तस्वीर थोड़ी बदली है और टीवी न्यूज चैनलों पर भी हिन्दी की थोडी वापसी की संभावना बढ़ी है, बाजार ने हिन्दी की वापसी की। समाचार में हिन्दी की भाषा कैसी

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

हो, तो हमारे सामने उस समय आकाशवाणी और दूरदर्शन थे। हिन्दी समाचार के नाम पर केवल भारत ही नहीं जो भी वामपंथी देश रहे हैं या समाजवादी देश रहे हैं उनमें या तानाशाही शासन वाले देश रहे हैं, उनमें रेडियो या टीवी जो सरकारी मीडिया रहा है वो नेशनलिस्ट मीडिया रहा है। जिसका काम था राष्ट्र का निर्माण करना, जो जिसका श्रोता या दर्शक जो भी है वह देश का नागरिक है और उसको हमें सूचना देनी है कि आपका विकास हो रहा है।

एक निश्चित उद्देश्य को लेकर नेशनलिस्ट मीडिया चलता रहा। पिछले चालीस–पचास सालों में इस देश में या दूसरे देशों में जैसे पाकिस्तान है या दूसरे वामपंथी देशों में नेशनलिस्ट मीडिया का ये पहुंच रही। लेकिन जिन देशों में पूंजीवाद रहा, जहां बाजार ने प्रभावित किया। वहां इस मीडिया की शक्ल बदली, वहां पर कैपीटलिस्ट मीडिया के लिए जो उसका श्रोता या दर्शक था जो उसका उपभोक्ता हो गया या वह उसका ग्राहक हो गया। उसको जो समाचार देना है, जिससे उसके दर्शक बढ़ते हैं उतना उसका बाजार बढ़ता है तो बाजार के कारण कैपिटलिस्ट मीडिया की पूरी पहुंच दूसरी थी, राष्ट्रवादी मीडिया की पूरी पहुंच दूसरी थी, अब इसी बाजार की वजह से न सिर्फ मनोरंजन के कार्यक्रमों की, शक्ल–सूरत ही नहीं बल्कि खबरों का चेहरा भी बदला, खबरों की भी शैली बदली, खाड़ी युद्ध के समय सीएनएन ने इस चीज को साबित कर दिया कि समाचार चैनल में समाचार की रंजकता ही मनोरंजक चीज हो सकती है।

भारत के हर घर में अगर केबल टीवी का फैलाव हुआ तो उसके पीछे बहुत बड़ा हाथ खाड़ी युद्ध का रहा। जहाँ लोग ये देखने के लिए अपने टीवी खोलकर बैठे रहते थे कि कब इधर से स्कैड़ चलता है कब उधर से पैट्रियाट चलता है और आसमान में टकरा जाता है। यहाँ युद्ध को भी बड़ी मनोरंजक घटना बनाकर सीएनएन ने पेश किया तो इसने समाचार की पूरी कवरेज की शैली को बदला, एक नया बाजार उत्पन्न किया कि समाचार या खबर भी बिक सकती है। खबर के लिए भी अच्छा बाजार है। लोगों को खबर एक नए तरीके से दी जा सकती है। लाइव कवरेज का एक नया कंसेप्ट सामने आया कि ज्यादा–से–ज्यादा लाइव करके जल्दी से जल्दी खबर दी जाती है तो दर्शक उस खबर की तरफ खिंचते चले जाते हैं। दर्शक उस चैनल की तरफ भी आकर्षित होते हैं यह बात साबित हुई है।

इसके बाद 1994 के आसपास हिन्दी में शायद सबसे पहले निजी न्यूज बुलेटिन की शुरूआत हुई। इसमें जी. न्यूज की शुरूआत हुईं इन्होने सोचा कि जो हमारा श्रोता है वह या तो मैट्रो शहरों का श्रोता है या खाड़ी के देशों का श्रोता है, यानी पाकिस्तान से, बँगलादेश से जाने वाला श्रोता है जो थोड़ी–बहुत ऐसी हिन्दी जानता है जो अंग्रेजी के शब्द अगर उसमें डालें तो उसको आसानी से समझ में आएगा। ये हिन्दी पता नहीं खाड़ी के देशों में कितनी चली? पता नहीं क्या हुआ? क्या नहीं हुआ? भारत में तो कम–से–कम ये हिन्दी चली नहीं। लोगों को लगा कि कोई दूसरे लोगों की भाषा को ले आ रहे हैं। 1995 में जब

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

'आजतक' शुरू हुआ तो 'आजतक' ने इस चीज को पहचाना कि टीवी की भाषा ऐसी होनी चाहिए जो दर्शक हैं उनकी जमीन से ही उस भाषा का सीधा रिश्ता होना चाहिए, जो हिन्दी के लोग हैं वह कैसे बर्ताव करते हैं? कैसे मुहावरे बोलते हैं? कैसी चीजें इस्तेमाल करते हैं? वो किस तरह से संवाद करते हैं,? भाषा उनकी कैसी होनी चाहिए? आप देखें कि खबर है, आजतक हिन्दी का नया चैनल है जब दो आदमी मिलते हैं तो एक पूछता है भाई क्या हालचाल है, हालचाल का मतलब क्या पूछा, क्या खबर है वो बताता है कि बेटा जो पास हो गया।

बड़ी खुशी की बात है, जो जब संवाद कर रहा है तो एक–दूसरे को खबर ही दे रहे हैं। यानी आप जब संवााद कर रहें है तो खबर दे रहे हैं, संवाद के अलावा कोई दूसरी चीजें नहीं। इस चीज को जब आप पहचाने, तो आप खबर की भाषा को, संवााद की भाषा बनाएँगे जैसे आप बोलते हैं लिखित जो भाषा होगी वह अखबार की भाषा होगी जो थोड़ी दूर का रिश्ता जोड़ती है क्योकि आपने अपने किसी दोस्त को चिट्ठी लिखी है तो आप थोड़ा औपचारिक होते हैं वही यदि आप किसी दोस्त से इस तरह मिलते हैं तो अनौपचारिकता को रखने की कोशिश की जाती है।

इसी तरह हमारा जो न्यूज एंकर है वह जब आपके ड्राइंग रूम में आता है तो आपका एक विश्वसनीय दोस्त बनकर आता है, जो आपको थोड़ा बेतकल्लुफ हो करके खबरें दे रहा है, आपको अपने इर्द–गिर्द की चीजें बता रहा है और समझा रहा है, उसकी भाषा में गर्मजोशी थी, उसकी भाषा में जिन्दादिली थी, उसकी भाषा सपाट, बेजान भाषा नहीं थी इसलिए तो 'आजतक' की भाषा को लोगों ने पसन्द किया कि नहीं कम–से–कम ये चैनल हमारी भाषा में बात करता है, जो ये कह रहा है सीधे–सीधे कह रहा है, इसमें कोई लाग–लपेट नहीं है लेकिन इधर पिछले कुछ सालों से टीवी पर हमने देखा कि 'आजतक' के आने के बाद यह भी है कि जी.न्यूज ने अपनी भाषा कुछ दिन के लिए बदली, कुछ उन्होने हिन्दी को अपनाया लेकिन इधर कुछ सालों से देखा गया है कि ये जो तमाम चैनल हैं, उनकी भाषा में वापस अंग्रेजी के शब्दों का इस्तेमाल बढ़ने लगा है।

आजतक में शुरू में अरूण पुरी जी आए और लिखा 'खुला विस्फोट' तो उन्होने कहा 'व्हाई केन नॉट यू राईट ब्लास्ट' तो तब से हम आजतक ब्लास्ट शब्द ही उपयोग कर रहे हैं क्योकि अरूण पुरी जी को समझ में नहीं आता था विस्फोट। तो कुछ तो ये भाषा की मजबूरियाँ समझ रहें है, लेकिन ये हिन्दी के ही साथ होता है। आज देखिए कि इसी देश में मराठीं, गुजराती, तमिल हैं, ऐसी दुर्गति उनकी भाषा की नहीं हो रही है जैसी हिन्दी के साथ रही है क्योंकि हिन्दी वालो ने कभी सोचा ही नहीं कि हमारी हिन्दी कैसी होनी चाहिए,? इलेक्ट्रोनिक मीडिया हो, चाहे अखबार हो, अखबारों के लिए भी यही चलन चल रहा है।

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

जैसे नवभारत टाईम्स है, चाहे हिन्दी दैनिक, दैनिक हिन्दुस्तान है, या जागरण है सबमें होड़ सी लगी है कि वह किस तरह अंग्रेजी को ज्यादा–से–ज्यादा मिला सकें। एक जनसत्ता अखबार जरूर दिखता है जिसमें अभी तक यह चीज नहीं है, वे अच्छी हिन्दी लिख रहे हैं हिन्दी के प्रति एक तो सावधानी बरतने का जो भाव है वह सिर्फ जनसत्ता में दिखाई देता है, इस पूरी बातचीत का मतलब यह नहीं है कि आप दूसरी भाषाओं से शब्द नहीं लीजिए। कोई भाषा जिन्दा रह ही नहीं सकती अगर वो दूसरी भाषाओं से शब्द नहीं ले।

हिन्दी में तुर्की भाषा के हजारों शब्द हैं, अंग्रेजी भाषा के भी पाँच–छः हजार शब्द हैं, तमाम अरबी फारसी भाषा के बहुत सारे शब्द है तो इन शब्दों को लेकर भाषा चलती है। लेकिन क्या है कि जो शब्द हमें लेने चाहिए जो स्थितियाँ यहाँ नहीं हैं, जो चीजें हमारे यहाँ नहीं हैं, जैसे स्टेशन ले लिया ठीक है, फ्लाई ओवर ने लिया ठीक है। जैसे वन डे क्रिकेट की बात थी, प्रभाषजी ने उसे फटाफट क्रिकेट कर दिया। ये अंग्रेजी का हिन्दीकरण है। ये सेंस होना चाहिए। प्रभाषजी विद्वान आदमी हैं। आप भारत के गाँवों में चले जाइए गाँव वालो ने जो मोटर साइकिल देखी उसको समझ में नहीं आया कि ये क्या है, उसने कहा कि फटफटिया। उसने उसकी आवाज सुनी और मोटरसाइकिल को फटफटिया कर दिया।

राजस्थान में लोगो से सुना है कि वो हवाई जहाज को चील गाड़ी बोलते है, ठीक है जो उनकी समझ है, वो फ्रीज को ठंडी अलमारी बोलते हैं और ये ठंडी आलमारी शब्द अच्छे–खासे मध्यवर्ग के घरों मे सुना जा सकता है कि ठंडी अलमारी से बोतल निकाल लो। वे लोग फ्रीज नहीं बोलते, क्योकि जो भी उनकी समझ है उनको अपनी भाषा के प्रति लगाव है। उन्होंने अंग्रेजी के शब्दों का एक हिन्दीकरण किया। मेरा भी यही कहना है कि आप हिन्दी का अंग्रेजीकरण न करो, अंग्रेजी का हिन्दीकरण करके ले लो। इसमें क्या बुराई है? और अगर आप दूसरी भाषा से शब्द नहीं लेंगें तो हिन्दी नहीं चलेगी। लेकिन आपको शब्दों को लेने में सावधानी होनी चाहिए। आप शब्दों का इस तरह से प्रयोग कीजिए कि आपकी भाषा का तेवर नहीं बदले, आपकी भाषा का गौरव बना रहे।[4]

मृणाल पांडेय के शब्दों में, मैं भाषा की तलाश में भटकती हुई स्त्रियों के संसार को खोज बैठी और स्त्रियों के संसार में रमने के बाद आज पचपन वर्ष की उम्र में भाषा के बारे में, श्रोताओं के बारे में, दर्शक के बारे में, एक दूसरी तरह की समझ मेरे अंदर पक रही है। मुझे लगता है कि कई मायनों में हिन्दी की स्थिति, स्त्री की स्थिति की तरह है और यह समान्तर चलती है। हमारे समाज में हम सभी जानते है कि लिंग भेद व्याप्त है और वर्गगत भेद भी है लेकिन भाषागत भेद भी है और ये तीनों भेद अगर आप खोल करके देखें तो इसमें जो इलीट (कुलीन) वर्ग है, वह भी एक ही है और उसकी मार सहने वाला वर्ग भी एक ही है। वस्तुतः लिंग–भेंद के द्वारा स्त्री और पुरूषों की दुनिया अलग कर दी गई है।

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

इसी को आगे भाषा के स्तर पर देखा जाये तो देखेंगे कि निन्यानवें फीसदी औरतें भारतीय भाषाएँ बोलती है, बडी मुश्किल से एक फीसदी औरतें अंग्रेजी बोलती है तो इस प्रकार से सत्ता या शक्ति या बाजार से खारिज करने वाला एक ही उपकरण बनता है फिर वर्ग भेद तो हमारे यहाँ है ही। वर्ग भेद को यदि देखा जाए तो इलीट वर्ग है चाहे वह हिन्दी पट्टी का हो या दक्षिण भारत का हो, पूर्व का हो, पश्चिम का हो, वहाँ सभी जगह स्त्रियों और पुरूषों की भाषा अंग्रेजी है। स्त्री कई मायनों में निम्नवर्ग के असवर्ण पुरूष से ज्यादा ताकतवर है। भाषा की दृष्टि से यह दिखता है उसके पहनावे, उसके व्यक्तित्व से ये बात दिखती है और उसके सामर्थ्य और कमाने की क्षमता से ये बात दिखती है। सभी स्त्रियां समर्थ नहीं है। लेकिन ज्यादातर स्त्रियां समर्थ है। इसी तरह हिन्दी सब जगह पिटती नहीं, कुछ जगह पीटती भी है लेकिन अधिकांश जगह हिन्दी ही पिटती है तो ये एक हमारे सामने समान्तर खुलता है।

मुझे लगता है कि जो अन्य भाषाओं से शब्द लेने की बात है, मेरे ख्याल से अन्य भाषाओं से शब्द ले, न लें, हिन्दी में काम करने वाले, हर एक व्यक्ति को चाहे वो शेधकर्ता हो, चाहे वो छात्र हो, चाहे वो एंकर हो, जितनी अधिक भाषाएँ वह सीख सके उतनी अधिक भाषा उसे सीखनी चाहिए। क्योंकि ये एक प्रकार से आपके रक्षा कवच बनतें हैं। उसके अतिरिक्त जिसे हम अग्रेजी में कहते है 'नो योर एनेमी बेटर' अगर आपको अंग्रेजी से लडाई लडनी है तो पहले आपको जाकर सीखना होगा कि अंग्रेज कैसे लडता है? कैसे बोलता है? क्या करता है? कि जैसे गाँधी ने किया था कि उसको उसी की जमीं पर जाकर शर्मिन्दा किया जाए, मरना जरूरी नहीं है शक्ति को नष्ट करना जरूरी नहीं है सिर्फ शक्ति को अपनी अतिरिक्त शक्ति होने के लिए शर्मिन्दा करना जरूरी होता है।

इसलिए मुझे यह लगता है कि रणनीति के लिहाज से हिन्दी के लिए ये कतई जरूरी नही कि मंच पर चढ़ कर और बाहें समेटकर गाली–गलौच करे, वह अंग्रेजी को पानी–पानी कर सकती है। मुझे एक बाद याद आती है कि मेरे पिता के एक मित्र थे उनकी पत्नि बहुत सीधी–साधी पहाडी महिला थी जब उनको नई जीप मिली थी, तो वे हमारे यहां पिताजी को दिखने के लिए अपने पूरे परिवार के साथ पधारे जैसे ही जीप से कूदकर के उतरे और कहा– देखिए पन्त साहब! ये है, वो है सत्ता मे इतना मुझे काम रहता है जैसे छुटभैये, छोटे शहरों के नेता बोलते है, वह सब कह रहे थे, उसके बाद जब जाने लगे तो जीप स्टार्ट नहीं हुई, तो फिर वे उतरे उन्होंने अपनें बच्चे–बच्चे को उतारा और कहा कि धक्का लगाओ तो उनकी जो पत्नी थी वो थोडी ऐसी घूंघट करके मेरी मदर के पास चुपचाप खडी थी, तब तक खास बोली नहीं थी। दबे स्वर में उन्होने कहा, ''बैठ गोछा जीपम्''। मुझे लगता है कि हिन्दी की भी यही स्थिति है।

उन्होंने आगे कहा कि हम लोगों ने बहुत शक्ति क्षय की है। एक स्त्री भी गुस्सा होने में शक्ति क्षय करती है, गुस्सा जरूरी नहीं है एक उग्रता जरूरी है क्योंकि गुस्सा आपको अपनी बुराइयों और कमजोरियों के प्रति

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

अंधा करता है। इसलिए जब मैं दर्शक और श्रोता की बात कर रही हूँ तो यह है कि हमारे जो पारम्परिक हिन्दी के दर्शक और श्रोता हैं वे अभी सद्गुणी सहिष्णु महिला वाला तेवर रखे हुए हैं। लेकिन पिछले कम–से–कम दस–पन्द्रह वर्षों में हिन्दी का दर्शक, श्रोता बहुत तेजी से बढ़ा है, फैला है। और यह वह नवसाक्षर वर्ग है जो हमारे गाँवों में, छोटे कस्बों में फल और फूल रहा है।

यह वह वर्ग है जो हिन्दी से सहिष्णुता की माँग नहीं करता। वह चाहता है कि हिन्दी का मुहावरा उग्र हो, दबंग हो और उसको इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि हिन्दी–अंग्रेजी से शब्द ले रही है। अंग्रेजी का हिन्दीकरण कर रही हैं, उसको यह चाहिए कि उसके तेवर सटीक हों और जो वह विश्लेषण कर रही है वह सटीक और उनके दिल में उतरने वाला हो। इसलिए उसको ऐसी हिन्दी पसन्द नहीं आती है, जो कहीं से भी उसको ये लगे कि उसमें अनुवाद की बू आ रही है और इसकी वजह से कि जिस भाषा से अनुवाद हो रहा है उस भाषा से उसकी बहुत अलग किस्म की साँठ–गाँठ है सिफ भाषा ही साँठ–गाँठ नही है जैसे अभी इस पानी की बोतल पर 'हिमालयन वाटर' लिखा है और इसमें लिखा है उको मैने अनुवाद में पढा कि यह 'हिमालय का वाटर है' जो 'इट इज सरटीफाईड बाइ इंस्टीट्यूट ऑफ फॉर–सी– नियोसो–हाटाएमर ऑफ जर्मनी'।

इसका मतलब हिमालय से आप पानी लाएँ, फिर उसको जर्मनी भेजा, वहाँ से उसमें बढ़िया का ठप्पा लगा कर, उसमें गुलाबी रंग का स्तर लगाकर बोतल पर चिपका कर तब उसको प्रस्तुत किया और ये हिमालय का पानी हिमालय के लोग नहीं पीते। मैं तो उसी इलाके से आती हूँ मुझे मालूम है औरतों को पांच–पांच छः–छः घंटे लगते हैं सिर पर मटके रखकर पानी लाने के लिए। लेकिन हिमालयाज वाटर यहाँ पर है तो जो गुस्सा अंग्रेजी से है, वह गुस्सा इससे नहीं है। गुस्सा इससे है कि पानी के स्रोत सूख गए हैं, पहाड़ कट रहे हैं, जमीन बाहर वालों के हाथों में बिक रही है। कौन है, जो मिनरल वाटर के कैरेट यहाँ रख करके, अल्मोड़ा, विन्सौर और कोसानी में जमीन खरीद रहे है और वहां जा करके छुट्टियाँ बिता रहे हैं। उसमें बहुत सारे टीवी के चैनलों के कर्त्ता–धर्ता और उनके बच्चे भी हैं, बहरहाल यह अवान्तर प्रसंग है। हिन्दी के दर्शक, श्रोता कौन हैं।

हिन्दी के दर्शक, श्रोता पारम्परिक भी हैं और गैर–पारम्परिक भी। मैंने कहा कि जो नई पौध है, जो नई फसल हैं, जो नई तरह से सोच रही है, जिसके जीवन अनुभव, जिसकी रोजमर्रा की जिन्दगी बिल्कुल अलग किस्म की है। और ये काफी कुछ फिर स्त्रियों की दुनिया में लौटे तो उसी तरह से है कि अस्सी के दशक में जब मैं वामा पत्रिका का सम्पादन कर रही थी, उस वक्त हमारे जो पाठक थे या हमारी जो पाठिकाएँ थीं जो बिल्कुल वो एक पारम्परिक मध्यवर्गीय पढ़ी–लिखी महिलाएँ थीं जिनके मन में एक सुगबुगाहट, एक तरह का आक्रोश वर्जनाओं के प्रति, समाज में स्त्री की स्थिति के प्रति था लेकिन उनकी

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

तादाद बहुत अधिक नहीं थी उसके बाद के वर्षों में बहुत तेजी से उन महिलाओं की तादाद में वृद्धि हुई है और लेकिन वो सब महिलाएँ एकदम उन मलिाओं की तरह नहीं हैं, उन्होंने उन महिलाओं के होने का ये लाभ पाया है कि उन्हें बहुत सारी आजादी विरासत में मिली है लेकिन उस आजादी का उपयोग वो हर तरह से कर रही हैं।

अब जैसे ब्यूटी प्रिजेंट्स और ब्यूटी परेड्स फिर होने लगी हैं। नारीवाद के मुहावरे उधार ले करके उनको कहा जा रहा है कि बिल्कुल सही है क्योंकि अगर देह पर स्त्री का अधिकार है जो उसका पूरा अधिकार ये भी है कि वह उसे देह का प्रदर्शन करे, जितने कपड़े पहने या न पहने यह उसका सहज अधिकार है, ये भी अवांतर प्रसंग है। हिन्दी के संदर्भ में यह मानसिकता समझें तो मुझे लगता है कि हिन्दी के दर्शक, श्रोताओं को बहुत सारी चीजें समझ में आने लगती हैं।

उन्होंने आगे बताया कि हमारे यहां भाषायी आधार पर आप समाज के ढ़ांचे को ज्यादा साफ तौर से देख सकते हैं और ये लड़ाईयां लडी जा रही हैं टीवी के चैनल पर न्यूज भाषा के मार्फत। ये मुझे समाजशास्त्रीय दृष्टि से बहुत रोचक लगती है क्योंकि इन भाषाओं के अंदर बहुत सारी जातियां, बहुत सारे वर्ण, स्त्री और पुरूषों के अंदर बहुत सारी जातियां, बहुत सारे वर्ण, स्त्री और पुरूषों के विभेद उनके आपस में आकर्षण और विकर्षण का एक निर्मम और लम्बा इतिहास छिपा हुआ है।

हिन्दी अपने गुस्से में, अपनी चिढ़ में और अंग्रेजी के प्रति वर्गगत विद्वेष, लिंगगत विद्वेष की वजह से रस खो रही है। एक लेखक और एक पाठक के बतौर मुझको इससे बहुत भय होता है कि हिन्दी की आत्मा रसहीन होती जा रही है। अखबारों मे जब पढ़ती हूँ, एडीटोरियल्स पढ़ती हूँ, लंबे–चौडे लेख पढ़ती हूँ, मन में ये लगता है कि ठीक है, कि धरातल से बात आप लोगों को समझा रही हूँ। मुझे ये लगता है कि हमें पूरे समाज, पूरी राजनीति, राज, स्त्री–पुरूष के सबंध सबके परिप्रेक्ष्य में हिन्दी को देखना होगा।

'आजतक' न्यूज चैनल मुझे बहुत अच्छा लगता था और चूंकि एस.पी. सिंह से मेरा गहरा और सच्चा स्नेह था इसलिए भी मुझे लगता था, आजतक का स्वांग भी सीखा है क्योंकि हिन्दी में फिल्म बनती है तो उसका फॉर्मूला भी उसके साथ बनता चला जाता है। तो यह तभी से होने लगा था कि अब मैं देख रही हूँ कि बहुत स्वांग भी दिख रहा है जिसमें उस तरह की हिन्दी को एक एथनिक फैशन बनाया जा रहा है कि एक एथनिक फैशन को तोडने के लिए परिहास रसिक होना बहुत जरूरी है।

एक सेंस ऑफ आयरनी होना बहुत जरूरी है ताकि हिन्दी को अपने रूप पर, अपने स्वांग वाले रूप पर गर्भ हो सके। क्योंकि फिर ये होता है कि वो स्वांग होने लगता है तो फिर हम गुस्सा हो जाते हैं। अब इतने बाल सफेद करने के बाद मुझे लगता है कि गुस्सा करना अच्छी रणनीति नहीं है। गुस्सा के वजाय उसके

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

स्वांग के लिए हंस के शर्मिंदा कर सकें कि बन्दा अगली बार करे तो उसे खुद हंसी आए कि बम विस्फोट कहां हो रहा है।[5]

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में हिन्दी

रजत शर्मा ने इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में हिन्दी की स्थिति को एक कहानी के माध्यम से बताया कि किसी गांव में एक चर्च था। चर्च ऐसा था कि फूटा–फूटा सा था। उसमें से भांय–भांय की आवाज आती थी। लगता था अब गिरेगा या तब गिरेगा। तो गांव वालों ने तो तय किया कि चर्च को गिरा दिया जाए तो हमारे यहां जब फैसला लेना होता है तो एक कमेटी बनती हैं, तो कोई एक फैसला नहीं लेती है, लिहाजा कमेटी बनी और उसने चार फैंसले लिए, पहला फैंसला यह था कि इस चर्च को गिरा दिया जाए, दूसरा फैसला यह था कि जब यह चर्च गिरा दिया जाए तो उसकी जगह एक नया चर्च बना दिया जाए, तीसरा यह था कि नए चर्च में बुर्ज और गुम्बद पुराने वाले चर्च के लगाए जाएं और चौथा यह था मित्रों कि जब तक नया चर्च बन नहीं जाता पुराने को गिराया ना जाए।

तो ये त्रासदी हमारी हिन्दी भाषा के साथ है, अंग्रेजी के साथ है, हम अंग्रेजी को छोड़ना चाहते हैं, हिन्दी से जुडा रहना चाहते हैं। आज हिन्दी का बहुत बडा मार्केट है, लेकिन अंग्रेजी को छोड़ नहीं पा रहे हैं इस चौराहे पर, इस क्रास रोड पर हम खडे हैं। ये ब्रॉडकॉस्टिंग की हिन्दी, टेलीविजन की सबसे बडी दिक्कत है, इसलिए जब हम भाषा का इस्तेमाल करते हैं, उसे सरल बनाने की कोशिश करते हैं, अंग्रेजी में हिन्दी शब्दों का इस्तेमाल करना शुरू कर रहे हैं। अपनी सुविधा के लिए हम कह देते हैं कि कोशिश करते हैं। हम अंग्रेजी का मोह नहीं छोड पा रहे हैं क्योंकि पिछले चालीस–पचास वर्षों में मुझे लगता है अंग्रेजी पत्रकारिता की विश्वसनीयता ज्यादा बनी है।

जबकि हिन्दी पत्रकारिता की विश्वसनीयता ज्यादा नहीं बनी। हिन्दी वालो को हीन भावना से देखा जाता है, इसलिए वह सब प्रोग्राम तो हम हिन्दी में करते हैं, लेकिन जहां पर बातचीत होती है किसी ड्राईंग रूम में तो हम अंग्रेजी बोलते हैं। हम अपनी छवि वही बनाना चाहते हैं। पिछले दो–तीन वर्षों में मैं यह जरूर कहूँगा कि जो पत्रकार और खास करके जो टीवी के पत्रकार हैं, उन्होंने अपनी जगह बनाई है, उन्होंने अपनी विश्वसनीयता बढ़ाई है, इसकी वजह से एक सम्मान जरूर मिला है और खुशी की बात यह है कि पिछले छः–आठ महीनों में मैंने एक चलन बनाया है कि जो अंग्रेजी के पत्रकार हैं टीवी पर जो अंग्रेजी में न्यूज बोलते हैं, उनको एक नया शौक चढ़ा है कि वे हिन्दी में बोलें चाहे वे टूटी–फूटी सी, अटकी हुई सी हिन्दी बोलें, लेकिन वे कोशिश करते हैं उनको यह बात समझ में आ गई है कि बिना हिन्दी बोले, बिना हिन्दी में कार्यक्रम दिए, इस देश में लोकप्रिय नहीं हो सकते है।

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

जन समूह अपील जब हमारी हिन्दी में होती है और जिसको मैं कहता हूँ इसको पोजिटिव मानना चाहिए। हमारी जो दिक्कत हिन्दी पत्रकारिता के साथ इलेक्ट्रॉनिक मिडिया में भी है, वह यह है कि हमारे पास में लोग नहीं है। अब तक जितने भी लोग आए हैं या बाइचांस आ गए है वो हैं या फिर वो है जिनकी ट्रेनिंग दूरदर्शन में हुई है।[6]

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में हिन्दी के भविष्य के बारे में अजय चौधरी ने बताया कि हिन्दी साहित्य की जो हिन्दी है उसका इस्तेमाल आज भी दूरदर्शन और आकाशवाणी पर हो रहा है, पहले तो बहुत ज्यादा होता था। ये जिम्मेदारी अभी पॉच छः साल पहले से ही शुरू हुई है कि भाषा आखिर कैसी हो? बोलचाल की ही भाषा हो या उसको और किसी तरह से सरल किया जाए। यह काम अभी चल रहा है और उसमें अनुभवी लोग नहीं हैं। जो लोग निपुण हैं वे ज्यादातर अभी प्रिंट मीडिया से आ रहे हैं और हम सभी लोग भी प्रिंट मीडिया से आए हैं। हमने भी पहले अखबारों में काम किया था, पत्रिकाओं में काम किया था उसकी अपनी एक भाषा थी।

अब तो वह संवाद की भाषा है। उसमें निश्चित रूप से चुनौतियाँ हैं, दिक्कते हैं, लेकिन उसका यह मतलब नहीं है कि अगले पॉच–दस साल में या आने वाले समय में चुनौतियों की स्थिति ज्यों की त्यों बरकरार रहेगी। इन स्थितियों में लगातार बदलाव होता जा रहा है वो लोग जो पहले अंग्रेजी और हिन्दी को मिक्स करके समाचार बुलेटिन चलाते थे, वे आज निखालिस हिन्दी में बुलेटिन चलाने लगे हैं। उस हिन्दी को भी और कैसे सरल किया जाए उसके लिए वे लोग लगातार कोशिश कर रहे हैं। लेकिन अभी जो डिक्शनरी हिन्दी की है वह अंग्रेजी शब्दों के अनुवाद पर बनी है और मैं रोज देख रहा हूँ।

नए–नए लोग हमारे यहॉ आते हैं, कल ही एक कॉपी देख रहा था जो एक चर्चित नॉवेल को अनुवाद करके लिखी गई थी। जैसे एक शब्द लें नावेल, उसे उपन्यास लिखा जा सकता था। उसी तरह म्यूजियम जैसे एक शब्द है इसका मतलब संग्रहालय अच्छा खासा शब्द है, हिन्दी में चलता है, लोग जानते भी हैं लेकिन ज्यादातर लिखने वाला हमेशा म्यूजियम लिखेगा और चलता भी है। म्यूजिक सब बोलते भी हैं तो इन सारी परिस्थितियों से आप कैसे निबटेंगे। इसके लिए जरूरी है बातचीत की भाषा हो। हिन्दी में कोई इस तरह का काम हो जो संचार माध्यमों की हिन्दी के रूप में, कोई एक भाषा को विभाजित किया जाए। अभी भी हमारे यहॉ कोई काम किसी भी स्तर पर नहीं हो रहा है।

हमारे यहॉ नकवी साहब को भाषा का बडा ज्ञान था। कॉपी का एक–एक शब्द देखते थे और उसमें वो काफी हद तक भाषा लिखने वाले के साथ एक बहस करते थे लेकिन ऐसे कम ही हैं जो बहुत ज्यादा दिन तक नहीं हो सकते क्योकि किसी में इतना धैर्य नहीं होता कि वो भाषा को लेकर इतना ध्यान दें। तो जो

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

भी हो भाषा को लेकी ये परिस्थितियां बनी रहेंगी और इन परिस्थितियों से निपटने के लिए जरूरी है कि हम इस पर एक सोच, विचार करें, और शोध या कोई रिसर्च प्रोजेक्ट इस पर चलायें

जहॉ तक हिन्दी का सवाल है तो पॉच–दस सालों मे जो नेशनल रीडरशिप सर्वे आया है, उसको देख रहा था उसमें अरबन और रूरल में जो शीर्ष दैनिक समाचार पत्र हैं, उनमें से एक भी अग्रेजी का नहीं है और हिन्दी में कई अखबार शीर्ष पर हैं। दैनिक जागरण, दैनिक भास्कर है, पंजाब केसरी है, अमर ज्वाला जैसे चार–पॉच अखबर हैं। फिल्म फेयर की भाषा हिन्दी या भारतीय है और उसका विकास लगातार हो रहा है और उसकी मॉग लगातार बढ रही है।

इटंरनेट पर लें तो हिन्दी की ही वेबसाईट पढतें है। इन्होंने चैट के लिए जो बनाया है वह इतना आसान बनाया है कि आप उसे आसानी से पढ सकते हैं, लेकिन उसकी भी जो बेसिक सोच है वो अंग्रेजी के ऊपर ही आधारित है। हिन्दी टाइपिग की बात है हम लोग अब कम्प्यूटर से सारी की सारी नई टेक्नालॉजी के की–बोर्ड उपयोग करते हैं। काम करने के लिए जो लोग नीचे के शहरों से या छोटे शहरों से आ रहे हैं वो उस माहौल के साथ अपने को बिठा नही पा रहे हैं क्योकि वह काम उन लोगों ने उस तरह से नहीं किया है अभी भी हिन्दी के अखबारों में कम्प्यूटर्स पहुॅच रहे हैं। लेकिन आधे से ज्यादा काम करने वाले अभी भी हाथ से ही कर रहे है और काम करने के लिए उसे कम्प्यूटर मित्र होना जरूरी है।

कुछ ऑफिसों में अभी भी 'टाइपराइटर' है जैसे कि पहले हुआ करते थे। हिन्दी का जो की–बोर्ड है वह उतना कठिन की–बोर्ड है कि उसको आप आसानी से सीख नही सकते और उसमें भी जब कई–कई तरह के आ गए हैं।

चौधरी जी ने आगे बताया कि कुछ फोंट की समस्या है, जैसे चाणक्य आ गया, तो कुर्ती आ गया है उसमें जो फोंट्स है, उसमें अगर क्रमांक लिखना है तो अगर नीचे क्र लगाना है तो उसके लिए दो–तीन–चार, ऑल, सिफ्ट और कुछ दबाएं तो उसके बाद पता लगा कि एक हलंत या स्वर निकल के आएगा और ये सारी चीजें, ये सारे कम्प्यूटर, सारी टेक्नालॉजी अब चैनल में आ गई है। इंटरनेट पर हिन्दी के विकास के लिए ये सभी जो तकनीकी चुनौतियां है उसे हिन्दी के लोग चुनें और इसे सरल करने पर कार्य हो।

मैं यहीं कहना चाहूॅगा कि हमारी जो भाषाई लडाई है वह समाज की लडाई है। मृणालजी ने साहित्य में अच्छा खासा काम किया है। हिन्दी साहित्य में इतना बडा नाम है लेकिन मुझे लगता है, कि भाषा को इन सब मुददों से अलग हटाकर देखना होगा। अगर हम पत्रकारिता के सन्दर्भ में भाषा की बात कर रहे हैं तो अगले पॉच– दस सालों में तो हमें इस सबसे थोड़ा सा अलग हटकर देखने की जरूरत है क्योंकि हमारी जरूरत हिन्दी के विकास की है और वो जो हिन्दी साहित्य के साथ जुडी हुई चीजें है, उसके विकास की भी। हम हिन्दी को एक पेशेवर हिन्दी के रूप में कैसे विकसित करें, ये सबसे बड़ी चुनौती है और इस पर

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

मै चाहूँगा कि जो हमारे विद्वान लोग है जिन्होंने हिन्दी का इतना काम किया है वे इस पर एक नजरिया रखेंगे और जिसको हम आगे आने वाले लोग सीखेंगे और उससे आगे बढेगे।[7]

प्रसारण में हिन्दी

टीवी प्रसारण में हिन्दी के बारे में जयदेव सिंह ने बताया कि हिन्दी मार्केटिंग की भाषा नहीं है। हिन्दी मेरे देश की भाषा है हमने उसको मार्केटिंग यह मानकर के बनाया कि हिन्दी लोगों कि भाषा है और यह लोगों तक पहुँचेगी। मेरे पास उदाहरण बहुत है लेकिन मैं एक–दो बातें कहूँगा और मैं भावुक हो गया हूँ इसलिए मेरी अवाज में थोड़ा कंपन्न कभी–कभी आएगा। हिन्दी की जब बात आती है मुझे गुस्सा भी आता है और दुःख भी होता है। खुशी भी होती है।

मैं गॉव के स्कूल में पढा हूँ और मेरी मात्रभाषा पंजाबी है और जयपुर के निकट एक गॉव में पढा हूँ और वहां मेरी प्रथम भाषा ऊर्दू थी, दूसरी अग्रेजी। हिन्दी मैंने अपने साथ के विद्यार्थियों से सीखी। मुझे हिन्दी लिखना–पढना उस समय तक नहीं आया जब तक कि मैंने ये निश्चय नहीं कर लिया कि अगर रेडियो में आना है, तो हिन्दी सीखनी पड़ेगी। अड़चने बहुत आई। गॉधीजी की कमेंट्री सुनी।

मैलविक डिवेलो की वाणी में मुझे अंग्रेजी नहीं आती थी। जब प्रथम वर्ष का छात्र था मॉ से कह बैठा कि मै हिन्दी में कमेंटेटर बनूंगा और सभी ने एक ऐसा मजाक उडा लेकिन उस दिन से कार्यक्रमों का संचालन, नृत्य कमेंट्री, संगीत कार्यक्रमों का संचालन यह सोचकर शुरू किया कि हिन्दी का ही शब्द आएगा, अंग्रेजी का नहीं। फिर बी.ए. में एक पेपर हिन्दी का था जिसमें पास होना अनिवार्य था। उसमें परीक्षा देना अनिवार्य था, उसमे 50 मे से 26 अंक प्राप्त हुए। यह तीन महीने की मेहनत थी। सबसे अच्छी बात जो मैंने सीखी कि अपनी आलोचना बर्दाश्त करूं। यह वह समय था जब मैं नृत्य को नृत् बोलता था, मृत्यु को मृतू बोलता था। अगर कोई कहता था तो नराज नही होता था।

किसी न किसी तरह से बड़ी मुश्किल से मै उदघोषक या आम भाषा का एनाउंसर बन गया। उससे पहले मैं समाचार पढ चुका था लेकिन उसके पहले उद्घोषक के रूप में मंजूर नहीं किया गया था। उस समय के अफसर गोपालदासजी आज के सबसे बडे प्रशसंक है जो प्रोग्राम एक्सीक्यूटिव थे।

सिंह ने आगे बताया कि जब मैंने खेलों की कमेंट्री की तो मुझे याद है, जयपुर में किसी ने कहा ऑल इंडिया लॉन टेनिस को आप क्या बोलेंगे, भारतीय गेंद–बल्ला मुठभेड, तो मुझे उन पर गुस्सा नही आया बल्कि हॅसी आई। टोक्यो में जब मुझे भेजा गया मैलविक डिवेलो की बात मैं नहीं जानता। मैं अंग्रेजी वाले लेखकों की आज भी बात नहीं जानता लेकिन प्रसारण करने वाले आज भी अपने को बहुत श्रेष्ठ मानते हैं। मै ये कहता हूं कि डिक्शनरी से देख लो, भाषा में शब्दों को उपयोग में हम भले ही ले लें।

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

एक बार लोक सभा का एक समाचार हिन्दी में इलेक्टिॅानिक मीडिया के लिए तैयार करना था। उसे तैयार करने के लिए मेरे पास समय नहीं था। समाचार में किसी सदस्य ने किसी दूसरे सदस्य से कहा– 'दिस इज नॉट ऑफ योर बिजनेस' तो उसका अनुवाद आया 'आपका कोई व्यापार नही है' इस समाचार में।

यह मैंने अपने कान से एक अनुवाद करने वाले से सुना तो मैं और मेरी पत्नी अपने माथे पर हाथ रखकर बैठे गए तो कृपया अनुवाद मत कीजिए, नहीं आता तो चार आदमियों से पूछिए, जिनसे पूछा जा सकता है। जब लाइव रिले होता है तो उसे जीवन्त प्रसारण कहा जाएगा। इसे सीधा–सीधा क्यों नहीं कहते कि अब ऑखों देखा हाल सुनाएंगे या सीधा प्रसारण करेंगे।

मेरे देश की भाषा हिन्दी पनपे, विकसित हो और उसका प्रमाण मेरे जीवन में तीन बार आया जब डॉक्टर राधाकृष्णन, श्री कामराज नाडार और एक दक्षिण भारतीय नेता का देहांत हुआ तब उन्होंने मुझसे हिन्दी में कमेंट्री करवाई। हिन्दी वालो का लोग पीछे से मजाक उड़ाते हैं। आज हिन्दी में जिन नेताओं की प्रशंसा की, मुझे याद आई है। उनमें सबसे पहले इन्दिरा जी, लाल बहादुर शास्त्री, मोहनलाल सुखाडिया, जवाहरलाल नेहरू जी, वाजपेयी जी और अब मोदी जी हैं।

आडवाणी बहुत क्लिष्ट हिन्दी बोलते हैं और लोग मुझसे पूछते है इसका क्या अर्थ हुआ। एक तो उच्चारण हमारा सही हो बिना बात जहॉ बिंदी न लगानी हो वहॉ लगा दी। मैं ब्राडकास्टर्स की बात कर रहा हूँ और जहॉ बिन्दी होनी चाहिए वहॉ नहीं लगाते। जरूरत को जूरत बोल दिया, रोज सुनता हूँ। तो ये कुछ अपने निजी व्यक्तिगत अनुभव है लेकिन श्रोता और दर्शक के रूप में कभी–कभी बहुत दुःख होता है तो अगर आप और हम सब यदि मिलकर अपनी हिन्दी को उसी स्थान पर ला सकें तो यह हिन्दी की सबसे बडी सेवा होगी और उसमें बीबीसी, वॉइस ऑफ अमेरिका, जर्मनी, रेडियो मास्को, चाईना आदि यानी ताज्जुब होता है कि किस तरह से वे लोग, आप लोग तो हिन्दी भाषा भाषी है चीन में जब एक महिला ने मुझसे हिन्दी में कहा तो मरे समझ कहा में नही आया कि हिन्दी में इतना कैसे बोल रही है, हिन्दी पढी होगी लेकिन जब पता पडा कि बराबर धर्मयुग पढती रही है, मुझे पढती रही है, वो मुझे जानती थी, वो मेरे काफी लेख पढ चुकी थी। सारा दायित्व जो है वो आज इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर आ गया है।[8]

निष्कर्ष (Conclusion)

भारत में टेलीविजन समाचार चैनलों की भाषा का अध्ययन के लिए सर्वेक्षण पद्धति, चैनल से जुड़े लोगों के साक्षात्कार एवं मीडिया के विद्यार्थियों से साक्षात्कार का समेकित रूप से अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष निकलता है कि–

जयपुर शहर में कुल टेलीविजन दर्शकों में से लगभग 58 फीसदी दर्शक समाचार देखते व सुनते हैं। बाकी 42 फीसदी दर्शक टेलीविजन पर प्रसारित अन्य कार्यक्रम देखते व सुनते हैं।

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

टेलीविजन पर समाचारों को देखने व सुनने के समय के बारे में लगभग 40 फीसदी दर्शकों का मानना है कि जब दर्शकों के पास वक्त होता है तब वे टेलीविजन देखते हैं तथा दोपहर 12 बजे से 5 बजे तक सबसे कम लगभग 5 फीसदी दर्शक संख्या रहती है।

भारतीय संस्कृति से संबंधित खबरें 'डीडी न्यूज' पर सबसे अधिक प्रसारित होती हैं। यह लगभग 42 फीसदी दर्शकों का मत है जबकि केवल 5 फीसदी दर्शक 'स्टार न्यूज' को बताते हैं।

टेलीविजन समाचार चैनलों पर प्रसारित सांस्कृतिक खबरों का प्रभाव सामान्य रहता है। यह लगभग 56 फीसदी दर्शक मानते हैं जबकि केवल 6 फीसदी दर्शकों का मत है कि प्रभाव बहुत अधिक रहता है।

वर्तमान में समाचार चैनलों की भाषा का कोई मानक नहीं है। बाजार की मांग के अनुसार प्रत्येक न्यूज चैनल अपनी बनाई हुई भाषा शैली (स्टाईल) का प्रयोग कर रहे हैं, चाहे वह भाषा हिन्दी हो, अंग्रेजी हो या मिलाजुला रूप हिंग्लिश हो। इस बात की उन्हे चिंता नहीं है कि हम किस भाषा का प्रयोग कर रहे हैं और इसका दर्शकों (समाज) पर क्या प्रभाव पड़ेगा। केवल उन्हें तो अपनी टीआरपी (टेलीविजन रेटिंग प्वाइंट) से है। चैनलों की भाषा तात्कालिक असर डालने वाली, दर्शक की प्रतिक्रिया को अनिवार्य बनाने वाली और उसे किसी न किसी रूप में सक्रिय करने वाली होती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूचीः

संचार माध्यम और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, अनिल चमडिया, पृष्ठ सं. 88–91

संचार माध्यम, जनवरी–जून, 2005, खंड 22, अंक–1, पृष्ठ सं. 16–17

संचार माध्यम और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, अनिल चमडिया, पृष्ठ सं. 88–91

नए जनसंचार माध्यम और हिन्दी, सुधीश पचौरी, अचला शर्मा, पृष्ठ सं. 13–21

पूर्ववर्ती, पृष्ठ सं. 22–29

पूर्ववर्ती, पृष्ठ सं. 34–36

पूर्ववर्ती, पृष्ठ सं. 38–40

पूर्ववर्ती, पृष्ठ सं. 41–46

शोध जर्नल एवं पत्रिकाएँ

संचार माध्यम एवं संचारक, भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली।

विदुर (हिन्दी एवं अंग्रेजी) प्रेस इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।

संचार श्री, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

हंस का टेलीविजन विशेषांक, जनवरी 2007 ।

मीडिया विमर्श, डॉ0 श्रीकांत सिंह, रायपुर, छत्तीसगढ़।

केबल क्वेस्ट, केबल ऑपरेटर्स फैडरेशन ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।

Journal of Communication of studies, MCRPSVV. Bhopal.

Media Asia, AMIC Publication.

साक्षात्कार

मनीष शर्मा, ब्यूरो चीफ, स्टार न्यूज, जयपुर।

शरत कुमार, ब्यूरो चीफ, आजतक, जयपुर।

प्रताप राव, ब्यूरो चीफ, ई.टीवी न्यूज, जयपुर।

हर्षा सिंह एवं राजन महान, एनडीटीवी, जयपुर।

प्रभु चावला, आजतक, नई दिल्ली।

धर्मेश भारती, डीडी न्यूज, जयपुर।

प्रभाष जोशी, जनसत्ता, नई दिल्ली।

Web Sites :-

www.bbc.co.uk

www.cnn.com

www.startv.com

www.zeetv.com

www.aajtak.com

www.ndtv.com

www.jagran.com

www.ddindia.gov.in

www.setindia.com

www.channelv.org

www.webduniya.com

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

Vol. II, Issue XXVIII – August 2017
Article ID # 40402017
Peer–Review Refereed Research Journal
ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

साम्प्रदायिकता एवं हिंदी उपन्यास

मुल्ला आदम अली, शोधछात्र, हिंदी विभाग,
श्री वेन्कटेशवर विश्वविद्यालय, तिरुपति – 517 502,
फ़ोन:- 9491990439, मेल:- mullaadamali@gmail.com

साम्प्रदायिकता भारत राष्ट्र और भारतीय जनता के लिए सबसे बड़ी समस्या है। साम्प्रदायिकता वर्तमान में सर्वाधिक बार प्रयुक्त होनेवाला और कई अर्थों में प्रयुक्त होनेवाला शब्द है। आज 21 वी सदी के एक दशकोपरांत राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों के अवलोकन से यह प्रतीत होता है कि जहाँ एक ओर मानव और समाज में अलगावादी प्रवृत्तियों का भयंकर रूप से विकास हुआ है, वही धार्मिक कट्टरता भी बढ़ी है। साम्प्रदायिकता शब्द की उत्पत्ति 'सम्प्रदाय' शब्द से हुई। सम्प्रदाय शब्द किसी प्रकार की धार्मिक कट्टरता की ओर इंगित नही करता लेकिन 'सम्प्रदाय' शब्द से बना 'सम्प्रदायवाद' अपने अर्थ में एक विशेष धार्मिक कट्टरता की गूँज पैदा करता है। ज्ञान् शब्दकोश में 'सम्प्रदायवाद' शब्द की परिभाषा इस प्रकार दी गई है "केवल अपने सम्प्रदाय को ही विशेष महत्व देना और अन्य सम्प्रदाय वालों से द्वेष करना।"[1] धार्मिक कट्टरता की गूंज है सम्प्रदायवाद, वही कालांतर में साम्प्रदायिकता के विस्फोट का कारण बनी।

साम्प्रदायिकता का अर्थ विकिपीडिया में – 'आपसी मत को सम्मान देने के बजाय विरोधाभास उत्पन्न होना, अथवा ऐसी परिस्थितियों का उत्पन्न होना जिससे व्यक्ति किसी अन्य धर्म के विरोध में अपना वक्तव्य प्रस्तुत करें, साम्प्रदायिकता कहलाता है। जब एक सम्प्रदाय के हित मे दूसरे सम्प्रदाय से टकराते है तो साम्प्रदायिकता का उदय होता है, यह एक उग्र विचारधारा है जिससे दूसरे सम्प्रदाय की आलोचना की जाती है, इसमें एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय को अपने विकास में बाधक मान लेता है। साम्प्रदायिकता समाज मे वैमनस्य उत्पन्न करती है।[2]

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

रामधारी सिंह दिनकर अपने ग्रंथ "संस्कृति के चार अध्याय" में साम्प्रदायिकता को संक्रामक रोग से तुलना की है, संक्रामक रोग की तरह समाज में साम्प्रदायिक दंगे फैलते है। साम्प्रदायिक दंगों से आम आदमी का जीवन दुर्लभ बनता है। राजनीति साम्प्रदायिकता का सहारा लेती है और आम जन को बाँटकर अपनी राजनीतिक रोटियां सेंकने के लिए ही साम्प्रदायिकता का राग अलापा जाता है।

ज्ञान विज्ञान के उन्नत चरम स्तर पर पहुँचकर भी मानव में संकीर्णता, भोगवादी प्रवृत्ति और दृष्टि व्यापक होती रही है, परिणाम स्वरूप जो भरतीय समाज में धर्म, भाषा, जाति, वर्ण और क्षेत्रियता इत्यादि के आधार पर समाज कई हिस्सों में बांटा हुआ था, वह खाई बढ़ती जा रही है। अलगावादी प्रवृत्ति के चलते हमने देश समाज और परिवार तक टुकडों-टुकडों में विभाजित कर संतोष की साँस नही ली है।

देश विभाजन त्रासदी और साम्प्रदायिकता को केंद्र में रखकर हिंदी उपन्याकारों ने इस समस्या पर लेखनी चला कर तथ्य को लोगों के सामने रखी है। विभाजन को विषय बनाकर यशपाल 'झूठा सच' दो खंडों में – 'वतन और देश', 'देश का भविष्य', कमलेश्वर 'कितने पाकिस्तान', भीष्म साहनी 'तमस', राही मासूम राजा 'आधा गाँव', शिवप्रसाद सिंह 'अलग-अलग वैतरणी', भगवान सिंह कृत 'उन्माद', आदि उल्लेखनीय है। साम्प्रदायिकता के खिलाफ साहित्यक विधाओं ने अपना प्रतिरोध व्यक्त किया है। हिंदी उपन्यासों में इसका विभिन्न पहलू ओं को नज़र अंदाज कर विकल्प की खोज का प्रयत्न किया है।

साम्प्रदायिकता जैसे विषयों को एक नये अंदाज में प्रस्तुत किया है 'कितने पाकिस्तान' में कमलेश्वर। देश विभाजन की पृष्ठभूमि पर भीष्म साहनी ने 'तमस' उपन्यास और अनेक कहानियों का भी रचना की है। यशपाल कृत 'झूठा सच' दो खंडों में भारत विभाजन समय लूटमार, मारधाड़, बलात्कार, शरणार्थियों एवं पुनर्वास की समस्या ओं, घटना ओं को अपने साहित्य का विषय बनाया।

देश आजाद के 71 वर्ष के उपरांत भी साम्प्रदायिकता का यह सवाल आज देश की अखंडता और एकता के लिए चुनौती ही नही है बल्कि समस्त राष्ट्र के अस्तित्व पर ही प्रश्न चिह्न लगा दिया है। साम्प्रदायिकता एक अभिशाप के रूप में संक्रामक रोग बनकर देश की

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

अस्मिता के लिए बडी चुनौती बन चुकी है। देश का आम आदमी धीरे-धीरे समझ रहा है कि साम्प्रदायिकता के नाम पर उसे किस तरह बेवकूफ बनाया जाता रहा है।

साम्प्रदायिकता के कारण मनुष्य-मनुष्य के बीच दूरी बढ़ती जा रही है, साम्प्रदायिकता के विरोध में साहित्यकारों ने अनेक विचार व्यक्त की है, उन्हें समझकर आम आदमी उन परिस्थितियों को दूर करने का प्रयास करें तभी उनके विचार सार्थक होते है। देश की खुशहाल की कामना करते हुए यह शोधपत्र समाप्त करता हूँ।

सन्दर्भ:-

1. श्री वास्तव मुकुन्दीलाल –(सं०) ज्ञान शब्दकोश पृ:- 718
2. विकिपीडिया – साम्प्रदायिकता का अर्थ
3. रामधारी सिंह दिनकर- "संस्कृति के चार अध्याय" पृ:-715

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

Vol. II, Issue XXVIII – August - 2017 ISSN No. 2395-6941
Article ID # 40502017 Website: http://www.umrjournal.com/
Peer–Review Refereed Research Journal

अनेंकांतवाद की अवधारणा

प्रवीण पाठक, पी-एच.डी गांधी एवं शांति अध्ययन

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय,वर्धा

Email-praveenpthak@gmail.com

सारांश *–गौतम बुद्ध के समान महावीर ने भी वेदों को अपौरुषयता स्वीकार करने से इंकार कर दिया । उन्होंने आत्मवादियों तथा नास्तिकों के एकांतिक मतों को छोड़कर बीच का मार्ग अपनाया जिसे 'अनेकांतवाद' कहा गया। इस मत के अनुसार किसी भी वस्तु के अनेक (पहलू) धर्म होते हैं तथा व्यक्ति अपनी सीमित बुद्धि द्वारा केवल कुछ ही धर्मो को जान सकता है । पूर्ण ज्ञान तो 'केवलीन' ले लिये संभव है। अत: उनका कहना था कि सभी विचार अंशत: सत्य होते है । यह उनकी बौद्धिकता का परिचायक है। समस्त विश्व जीव तथा अजीव नमक दो नित्य एवं स्वतंत्र तत्वों से मिलकर बना है । जीव चेतन तत्व है जबकि अजीव अचेतन तत्व जड़ तत्व है । यहाँ उनका तात्पर्य उपनिषदों के सार्वभौम आत्मा से न होकर मनुष्य की व्यक्तिगत आत्मा से है। इनके अनुसार आत्मायें अनेक होती हैं। चैतन्य आत्मा का स्वाभाविक गुण है । वे सृष्टि के कण-कण में जीवों का वास मानते है । इसी कारण अहिंसा पर विशेष बल दिया ।*

मुख्य शब्द-महावीर स्वामी,अनेकांतवाद ,जीव,द्रव्य ,धर्म

प्रस्तावना- भारत वर्ष वैचारिकि संपन्नता का केन्द्र रहा है | स्वभाविक है की जहाँ अनेक विचारधाराओं का प्रवाह रहेगा | वहा वाद-विवाद स्वत: जन्म ले लेगी | अनेक सांस्कृतियों वाले इस देश में जहाँ विचार ने जन्म लिया वहीं समय-समय पर ऐसे लोकनायकों का उदय हुआ हैं | इसमें जैन तीर्थकर इस प्रकार के महान लोकनायक थे | जिन्होंने अनेकांत के सिद्धांत का प्रतिपादन कर प्रत्येक दृष्टिकोण का समादर करते हुए किसी भी विचार का निषेध नहीं किया |

अनेकांत "शब्द" अनेक और अत: इन दो शब्दों के योग से बना है | जिसका अर्थ होता हैं "अनेक अंता:धर्मा:यस्यासों अनेकांत:| यह पर अंत शब्द का अर्थ धर्म स्वभाव स्वरूप है इस प्रकार जिसमे अनेक धर्म पाये जाते है, उसे अनेकांत कहते है | "अष्टसहसी" मे लिखा है की,

"सपसन्नित्यानित्यादि सर्वथैकान्तप्रतिक्षेपलक्षेवोनेकान्त:"

अर्थात सत्य,असत्य,नित्यत्व,आनित्यत्व,आदि सर्वथा एकांन्तो की अस्वीकृति अथवा प्रतिवाद का नाम अनेकांत है|

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

तो वही "सप्तभगीतंरगिणी" में कहा है,

"अनेकें अंता धर्मा सामान्यविशेषप्रयार्य: गुणा सस्येति सिधोनेकांत:"

अनेकांत शब्द में अंत का अर्थ यहा धर्म है | पदार्थ में विविध गुण होते है | पदार्थ अन्नत: धर्मात्मक होता है| जड़ और चेतना में अनात्मा एव आत्मा में अनेक धर्म एव गुण होते है | अनेकांतवाद का तात्पर्य सिर्फ जीव आदि पदार्थो के समान्य गुणों एवं विशिष्ट गुणों आदि कों बतलाना मात्र नहीं है|

इसका कारण यह है की प्रत्येक पर्दाथ में निहित विविध गुणों की सत्ता की स्वीकृति अन्य दर्शनों में भी हैं | पर्दाथ को अनंत: धर्मात्मक मानने वाले सभी दर्शन सभी अनेकांतवादी नहीं है | अनेकान्तवादी एकांतवादी आग्रह का निषेध करता है, जब आग्रह समाप्त होता है। जब मतवाद समाप्त होता है | जब सक्रितायें टूटती है | तब अनेकांत का उदय होता हैं | जैनाचार्य वस्तु के अनेकांत स्वरूप का घोतक करने के लिए स्यात: शब्द के प्रयोग की आवश्यकता महसूस करते है अर्थात अनेकांत दर्शन चित्त मे मध्य-स्थान वीर-रागता का उदय करता है | स्यायद्वाद से वाणी मे निर्दोषता आती है | "आइस्टीन" ने दिक-काल की सापेंक्षता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है | आइस्टीन का सिद्धान्त केवल भौतिक विज्ञान तक सीमित है | वही अनेकांतवाद जीवन के प्रत्येक पक्ष के विश्लेषण विवेचना की वैज्ञानिक प्रविधि है| यह सत्य के अनुसंधान की तर्कसंगत एव सुनियोजित प्रक्रिया है | इस प्रकार सीमित ज्ञान शक्ति के होते हुए भी पदार्थ के एक-एक गुण धर्म का ज्ञान करने के अंतर पदार्थ के समग्र धर्मों एक गुणों को पहचानना है | सामान्य व्यक्ति के द्वारा भी सत्य का सम्पूर्ण साक्षात्कार की शोध प्रविधि का नाम अनेकान्तवाद हैं |

इसी अनेकांतवाद धृत के कारण भगवान महावीर के विरूद्ध प्रगति होने वाले मतों को एक सूत्र में पिरों दिया उन्होंने जीवन आचरण के लिए अहिंसा दृष्टि का नाम है 'अनेकांतवाद' उन्होंने मनुष्य के विवेक को जागृत किया भगवान ने उन्मुक्त दृष्टि से विचार करने का मार्ग प्रशस्त कर प्रतीयमान परस्पर विरोधी मतों में समन्वय स्थापित किया तत्वबोध की व्यापकता एवं सर्वव्यापी उदार दृष्टि के कारण वे पदार्थ को अनेकांतिक स्वरूप को पहचान सके।

आचार्य तुलसी ने कहा है कि एक ही वस्तु मे विरोधी अविरोधी अनेक धर्मों का गुण का एक साथ स्वीकार करना अनेकांत हैं विश्व में जितनी भी वस्तुए है वे सब अनेकांतस्वरूप है | प्रत्येक वस्तु की अनंत धर्मिता वस्तुस्त्य है यह अनेकांत स्वरूपता वस्तु में स्वत: पाया जाता है आरोपित या काल्पनिक नहीं है एक भी वस्तु ऐसी नहीं है जो सर्वथा एक धर्मात्मक या एकांत स्वरूप हो।

आचार्य कुंन्दकुन्द ने कहा है कि यह जगह अर्थात सत्ता द्रवरूप है और सामान्य रूप से सहभावी गुणों और क्रमवर्ती पर्यायों को प्राप्त होता हैं यह सत्ता सभी पदार्थो में विधमान है वह नाना स्वरूपयुक्त होने से विश्वरूप है अनंत पदार्थो से युक्त होने से है उस सत्ता में ध्रुव , उत्पाद , व्यय विद्यमान है वह एक रूप है वह सत्प्रतिपक्ष है।

सत्प्रतिपझ का अर्थ - जिस हेतु साध्य का अभाव दूसरे हेतु द्वारा सिद्ध किया जा सके | जैन – दर्शन के अनुसार संसार में अनंत जीव है वे अनंत स्वभाव के है अनंत वस्तुए है और अनंत परिणमन है महावीर स्वामी द्वारा उपदिष्ट वचन को उद्धत

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

करते हुए आचार्य कुंन्दकुंद कहते है कि " सर्वज्ञ भगवान क्लि देशना है कि जो सत्ता लक्षण युक्त है , वह द्रव्य है | जिसमे उत्पाद व्येय सयुक्त है वह भी द्रव्य है जो गुण और पर्यायों का आश्रय है उसे भी द्रव्य कहते है " आचार्य कुंदकुन्द ने यहां पर द्रव्य के तीन लक्षण का निर्देश किया है।

(1) द्रव्य सत्तारूप है (2) द्रव्य गुण प्र्रयेय युक्त है (3) द्रव्य उत्पाद - व्येव ध्रोवी रूप है

यह आचार्य कुंदकुन्द का अनेकांतिक दृष्टिकोण है ये तीनों लक्षण परस्पर विरोधी न होकर परस्पर सापेक्ष है। इस संसार मे अनेक जीव है अनेक पदार्थ है और अनेक परिणमन हैं | यही सत्य है सत्य का स्वरूप सापेक्ष विचारशैली को ही अनेकांतवाद कहते है अनेकांतवाद जैन अध्यात्म कि संरचना का मूलभूत त्तव है यह विरोधीभावों के एकीकरण को सत्य का वास्तविक परिणाम मानता है इस प्रकार अनेकांतवाद विरोधाभासी सत्य के रहस्यों को उजागर करने का साधन है कोई भी वस्तु पूर्णरूप से न तो सार्वभौमिक है न ही आंतरिक,न स्थायी है और न आस्थायी बल्कि उसमे दोनों ही लक्षण विद्यमान है तर्क से ये सिद्ध नहीं होता है कि वस्तु का अस्तिव है या नहीं, अनुभव से ही निश्चित होता है कि वस्तु या नहीं जैसे गुण मिटा होता है तर्क केवल उसी चीज को क्रमवद्ध व युक्तिसंगत करता है जिसे अनुभव प्रदान करता है किसी वस्तु के स्वरूप का निर्णय उसके स्वभाव और उसकी अवस्था विशेष पर निर्भर करता है जैसे घड़ा स्वभाव कि अपेक्षा मिट्टी है और अवस्था कि अपेक्षा खड़ा |

परिवर्तन या रूपांतरण उन सभी वस्तुओ का मूलभूत लझण है जो सत्य है स्थायी समानता की पृष्ठभूमि के बिना परिवर्तन को नहीं समझ सकते है जैसे मेरा गाँव पहले से बहुत बदल गया है (समय वही हैं) मेरा गाव इस शहर से बहुत बदला हुआ है (स्थान वहीं है)

जैन सत्य की गतिशील- प्रकर्ति पर विश्वास करते हैं वेदान्त परिवर्तन को आभासी मानकर इन तीनों लझण को नज़रअंदाज़ कर देते हैं | एक और विभिन्नता पूर्ण तारतम्य के साथ होती है सत्य को परिवर्तन की पर्याय में देखा जाए तो अस्तित्व मे आता है और जाता है विरोधाभास आभासी है, क्योकि इसमे संतोषजनक अनुभव और विचार पैदा होता है | पदार्थ पर्याय समानरूप से समान और भिन्न माने जा सकते है इसमे पूर्ण स्वीकार या अस्वीकार जैसी कोई बात नहीं है | जैसे मिट्टी और घड़ा बौद्ध समानता को जैनों की तरह नहीं मानते है | वेदान्त भिन्नता को नहीं मानता है जबकि अनेकांत दोनों की सत्यता को स्वीकार करता है व दोनों को सत्य का अनुभव द्वारा प्रमाणित गुण मानता है या नहीं है 'एक ही शब्द द्वारा एक ही समय मे व्यक्त नहीं किया जा सकता है इसलिए इसे अवाच्य भी कहा गया है जैन न तो धारणा का विरोध करते है और न ज्ञानेद्रियजन्य चेतना का | यानि कि विशेष और सार्वभौमिक एक दूसरे में समाहित है इस प्रकार सत्य सम्प्रेषण और निर्णय के लिए बराबर का उत्तरदायी है पदार्थ, गुण और पर्याय के आपसी सम्बन्धों कि सत्यता अध्यात्म का जटिल विषय है जैनियों का मुख्य विषय पदार्थ और गुण के आपसी संबंध मुख्य धारणा है यह संबंध ही है जो संसार मे क्रमबद्धता और संयोग लाता है।

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

अनेकांतवादी विचारधारा के अनुसार सत्य अनंत और धारणाओ की समानता है- सत्य एक ही वस्तु की एकता अनेकता में निहित है और इसमे निहित सत्य केवल पूर्ण समानता मे है पूर्ण भिन्नता में वरन इन दोनों में है बहुत से पहलू और पार्यायों का एक हो जान ही सत्य है या जब एकता व विभिन्नता एक हो जाते है तब सत्य सामने आता है इसलिए पदार्थ और उसके गुण था। पर्यायों के बीच सम्बन्धों का अध्ययन जैनियों का मूल विचारधारा है आधुनिक भौतिकी की यह मूल अनुभूति है की कोई भी सिद्धांत कभी भी सत्य के सभी पहलुओ की व्याख्या नहीं करता है और इसलिए यह कभी वास्तविक स्थिति की पूर्ण विवेचना नहीं करता ,क्योकि यह प्रयोगिक तथ्यों के एकीकरण पर निर्भर है।

वस्तुओ की अंतधर्मर्मिता- इस विश्व के समस्त पदार्थ द्रव्यदृष्टि गुंदृष्टि और पर्याय दृष्टि की अपेक्षा से अनेकांत स्वरूप या अंततधर्मी है। उदारहण के लिए जीव द्रव्यसमान्य की दृष्टि से एक होकर भी चेतना , सुख , वीर्य , आदि गुणो तथा मनुष्य , तिर्यच , नारकि , देव आदि का अनेकांत अनत्तधर्मिता प्रसिद्धि है इसी प्रकार आजीव द्रव्य को देखा जा सकता है शरीर सामान्य की अपेक्षा से एक है पर रूप , इस गंध, स्पशादी गुणों और बाल्यावस्था, किशोरावस्था, युवावास्था, वृद्धावस्था आदि क्रमवरती पर्यायों का अधार होने से अनेक भी है इस जगत का प्रत्येक पदार्थ अनेक धर्मात्मक है

प्रतेक वस्तु श्रव्यद्रवी की अपेक्षा अस्तिस्वरूप है और परद्रव्यादी की अपेक्षा नास्ति स्वरूप है क्योकि एक द्रव्य मे अन्य सजातीय और विजातीय द्रव्यों का स्वतंत्र अस्तित्व ही सिद्ध हो सकता है इसके साथ ही एक वस्तु में भी धर्मो और अनंत धर्मो की अपेक्षा विचार करने पर उनमे से भी प्रत्येक का अपने अपने विवक्षित स्वरूपपादी की अपेक्षा स्वतंत्र अस्तित्व सिद्ध होता है क्योकि प्रत्येक धर्मो जैसे स्वरूप से सत हैं वैसे ही गुण पर्याय रूप प्रत्येक धर्म भी स्वरूप से सत है कोइ किसी के कारण स्वरूप सत हो ऐसा नहीं है।

निष्कर्ष- जैन दर्शन स्वरूप से और पररूप से असत इत्यादि तथ्य को स्वीकार कर जो अनेकांत की प्रतिष्ठा की है। उनका प्रमुख कारण यही है वस्तुत्व की अनंतधर्मिता अनुभवसिद्ध | पुष्प का वृक्ष मे अस्तित्व है पर उसी पुष्प का आकाश मे असदभाव है जिस प्रकार वृक्षश्र्य की अपेझा पुष्प का सदभाव एवं आकाश की अपेक्षा असदभाव है उसी प्रकार सत का कंथचित सदभाव है तथा पररूपादी की अपेक्षा उसका अभाव कहा गया है वस्तु का वस्तुत्व दो बातों पर निर्भय है प्रत्येक वस्तु अपने स्वरूप को अपनाये हुई है और अपने से भिन्न अनंत वस्तुओं के स्वरूप को नहीं अपनाये हुई है तभी उसका वस्तुत्व कायम है यदि ऐसा नहीं माना जाएगा तो वह वस्तु नहीं रहेगा कोई धारणा एकांतिक होकर शुद्ध और सर्वथा सत्य नहीं हो सकती है पूर्ण सत्य के लिए अनेकांत दृष्टिकोण को ही अपनाना होगा क्योकि इस संसार के समस्त पदार्थ अनंतधर्मी हैं न कि एकधर्मी जल,प्यास,शांत करने फसल पैदा करने आदि में सहायक होने से प्राणियों का प्राण है परंतु बाढ़ लाने और डुबकर मरने आदि कारण होने से प्राणियों के लिए घातक भी है सभी धर्मो कि सत्ता अपनी अपनी निश्चित अपेक्षाओं से स्वीकृत है। धर्मो का विशेष प्रतिभास निर्विवाद सापेक्ष रीति से बताया गया है वस्तु अनेक धर्मात्मक है इसमे कोई विवाद नहीं है कभी भी जीव चैतन्य - द्रव्यत्व उपयोग असख्यात प्रदेशत्व आदि सामान्य स्वरूप को नहीं

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

छोड़ सकता है पर्याय कि अपेक्षा उसकी अनेक प्रकार कि स्थितियां है वस्तुओ कि इसी अनंतधर्मिता को अधार बनाकर ही अनेकांतवाद का प्रतिपादन किया गया है

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शास्त्री ,प .कैलाशचंद्र ,जैन सिद्धांत , भारतीय ज्ञानपीठ , नई दिल्ली ,2001
2. जैन ,संपादक गोकुलचंद्र, जैनविद्या प्राकृत ,सम्पूर्णान्द संस्कृत विश्वविद्यालय , वाराणसी ,1987
3. जैन ,संपादक प्रो. वृषभ प्रसाद ,जैन धर्म परिचय ,भारतीय ज्ञानपीठ ,नई दिल्ली 2012
4. मुनि ,आचार्य श्री देवेन्द्र ,जैन वागमय परिचायक अध्ययन जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा , यूनिवरसिटि पब्लिकेशन ,2005
5. शास्त्री ,कैलाशचंद्र , जैन न्याय ,भारतीय ज्ञानपीठ ,नई दिल्ली 2001
6. जैन , छगन लाल ,जैन ,डॉ . संतोष ,जैन ,डॉ. तारा , जैनों का संक्षिप्त इतिहास ,दर्शन व्यवहार ,एवं वैज्ञानिक आधार , राजस्थानी ग्रंथागार ,राजस्थान,2013
7. सागर ,मुनि प्रभाव ,जैनत्त्वविद्या भारतीय ज्ञानपीठ ,नई दिल्ली ,2006
8. मित्तल ,डॉ. महेंद्र , भगवान महावीर ,लर्निंग ट्री पब्लिशर्स डिस्ट्रिव्यूटर्स ,नई दिल्ली ,2006

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

Vol. II, Issue XXVIII – August - 2017
Article ID # 40602017
Peer–Review Refereed Research Journal
ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

विज्ञापन और उपभोक्तावाद

डॉ. साधना शर्मा, एसोसिएट प्रोफेसर,
श्यामा प्रसाद मुखर्जी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

सूचना तकनीक के क्षेत्र में क्रांति और भूमंडलीकरण का आरंभ एक साथ ही हुआ है। इसके साथ ही उदारीकरण का दौर शुरू हुआ जिससे उदारीकरण के नाम पर मुक्तबाज़ार के विचार को सारी दुनिया में फैला दिया। कहने का तात्पर्य यह है कि ये तीनों परिघटनाएँ एक ही कड़ी में जुड़ी हुई हैं। भूमंडलीकरण और उदारीकरण के बाद संपूर्ण विश्व की आर्थिक व्यवस्थाओं में जो अभूतपूर्व परिवर्तन उपस्थित हुआ, उसके प्रभाव से भारतीय बाज़ार की अर्थव्यवस्था का मूल एजेंडा अधिक से अधिक लाभ कमाना था और संपूर्ण विश्व के बाज़ारों ने इसके द्वारा भरपूर मुनाफ़ा कमाया, भारत ने भी इसी रास्ते पर चल कर अपनी क्षमता के अनुरूप फ़ायदा उठाया।

यह तथ्य स्वयं सिद्ध है कि मुक्त बाज़ार व्यवस्था में व्यवसाय और औद्योगिक क्षेत्रा में खूब विकास हुआ। सारी दुनिया के बाज़ारों के लिए भी भारत के दरवाज़े खोल दिए गए। विविध प्रकार के उत्पादों और उनके नए–नए ब्रान्डों से भारतीय बाजार पट गए। ऐसी स्थिति में चयन की समस्या उपभोक्ता के लिए पैदा होती है, कि वह कौन–कौन सी वस्तुएँ खरीदे और कौन सी छोड़ दें; इसी प्रकार उत्पादक के सामने अपनी वस्तुओं को अधिकाधिक मात्रा में बेचकर ज्यादा से ज्यादा मुनाफ़ा कमाने की आकांक्षा रहती है। इन दोनों को ही किसी ऐसे माध्यम की जरूरत थी जो उनके मध्य सेतु का काम करे, ऐसे में विज्ञापन ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

विज्ञापन आज की बाजारवादी अर्थव्यवस्था की ज़रूरत पूरी करने के लिए बहुत आवश्यक था। विज्ञापन लंबे समय से समाज के अलग–अलग वर्ग के लोगों के लिए चयन प्रक्रिया में सहायक रहा है तथा उत्पादों से संबंधित जानकारी उपलब्ध कराने का एक सशक्त उत्पादन रहा है। वास्तव में विज्ञापन एक उत्साह भरा, गतिशील एवं चुनौतीपूर्ण उद्यम है, जो उद्योग एवं व्यवसाय के लिए अनिवार्य है। विज्ञापन सामान को बेचने, सेवाओं की सूचना देने एवं चित्रों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजने तथा विचारों को सूचना के रूप में एक स्थान से दूसरे स्थात तक भेजने का एक शक्तिशाली माध्यम है। यहाँ यह बात बहुत अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि विज्ञापन के माध्यम से किसी वस्तु की बिक्री नहीं की जाती; अपितु यह वस्तु को बेचने में 'सहायक' मात्र होता है। यह वस्तुओं और उत्पादों की सूचना देने और इनकी मार्केटिंग करने की एक प्रणाली मात्र है; न कि बेचने का एक साधन।[1]

[1] विज्ञापन और ब्रांडः संजय सिंह बघेल

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

जनसंचार माध्यमों तथा मुक्त बाज़ार ने विज्ञापन के कार्यव्यापार को अद्‌भुत विस्तार दिया है। इसने भारत जैसे देश में जहाँ कम से कम वस्तुओं का संग्रह, इच्छाओं पर नियन्त्रण तथा भौतिक सुखों के प्रति आकर्षण या मोह–त्याग का आदर्श स्वीकार किया जाता था; एक नई संस्कृति को जन्म दिया है और वह है भोग की संस्कृति। वस्तुतः विज्ञापन एक ऐसी कुशल रणनीति के तहत काम करता है जो एक सामान्य ग्राहक को उपभोक्ता के रूप में परिवर्तित होने के लिए विवश कर देता है। यहाँ उपभोक्ता और सामान्य ग्राहक के अन्तर को समझना भी अनिवार्य है। सामान्य ग्राहक वो है जो अपनी आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए किसी वस्तु को खरीदता है, जबकि उपभोक्ता अपनी इच्छा को संतुष्ट करने के लिए बाज़ार में उपलब्ध अनेक उत्पादों में से किसी एक को लेता है और यदि उपभोग के बाद वह उसे अच्छी लगती है तो वह सदा के लिए उस उत्पाद से जुड़ जाता है।

जब हम भारत के संदर्भ में उपभोक्ता संस्कृति की बात करते हैं तो हम यह मान कर चलते हैं कि संस्कृति मानव–स्वभाव का मूलभूत आधार है। संस्कृति ही वह विशेषता है जो मनुष्य को अन्य जीवघंटियों से भिन्न रूप में स्थापित करती है। संस्कृति ही मनुष्य को आचार–व्यवहार, उचित–अनुचित तथा जीवन मूल्यों के निर्धारण की शिक्षा देती है। परन्तु आधुनिक समाज इस पारंपरिक सांस्कृतिक मूल्यों को लेकर निर्मित होने वाले समाज से भिन्न है। इस समाज में एक ऐसा वर्ग है जो औद्योगिक क्रांति के बाद पैदा हुआ और जिसका विकास सूचना तकनीक के युग में हुआ है। जनसंचार माध्यमों के द्वारा प्रचारित और प्रसारित वैश्विक संस्कृति के परिणामस्वरूप एक नई संस्कृति का उदय हुआ जो मीडिया संस्कृति या पापुलर कल्चर के रूप में जानी जाती है और जिसके उद्‌भूत होने में विज्ञापनों की भी भूमिका रही है।

सांस्कृतिक स्तर पर विज्ञापनों ने एक ओर हमारी जीवन–शैली को बदला जिनका सम्बन्ध खान–पान, रहन–सहन तक को समेटे हुए था। इन सब पर विज्ञापनों का प्रभाव है। जैसे विज्ञापन के मायाजाल से निकली टू मिनट्स मैगी नूडल हो या थर्टी मिनट्स में आपके घर तक पहुँच जाने वाला डोमिनोज़ पिज्ज़ा' सबने ऐसा फँसा दिया कि बच्चे अब दालरोटी खाना ही भूल गए हैं। ये विज्ञापन पेट भरने या भूख के लिए खाना खाने की ज़रूरत से नही 'टू मिनट्स' और थर्टी मिनट्स नहीं तो पैसा नहीं हमारे पहनावे तक का निर्णय विज्ञापन ही कर रहे हैं। विवाह के अवसर पर बेटी कैसे बाल बनाएगी, कैसे सजेगी यहकोई ब्यूटी पार्लर तय करेगा कौन से कपड़े पहनेगी इसकी सलाह भी कोई बड़ा डिज़ाइनर देगा।

भारतीय व्रत त्योहार भी अपने पारंपरिक स्वरूप को छोड़कर बाज़ार के इशारों पर चलने लगे हैं। करवाचौथ जैसा पारंपरिक त्यौहार जो महिलाओं के सतीत्व और पति के प्रति प्रेमका प्रतीक है, विज्ञापनों की चकाचौंध से जगमगा रहा है। सास के प्रेम का प्रतीक बहू को सुबह–सुबह खाने के लिए दिया जाने वाला भोजन (सरगी) भी बड़ी–बड़ी मिठाई की दुकानों में सजेहुए खाद्यपदार्थों की छाया में उपभोग

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

सामग्री के नवीन रूप में उपस्थित हुई है।यह सब बाज़ारवाद और विज्ञापन के बढ़ते प्रभाव से उत्पन्न उपभोक्तावाद के कुछ नमूने हैं।

वस्तुतः विज्ञापन उपभोक्तावाद को बढ़ावा देने के लिए लोगों के बीच वस्तुओं की माँग का सृजन करते हैं अधिकांशतः उन चीज़ों की माँग सृजित करते हैं जिनकी ज़रूरत आमतौर पर उपभोक्ताओं को नहीं होती। यद्यपि बाज़ारवाद के समर्थकों का कहना है कि ऐसा नहीं है। परन्तु हम देखते हैं कि बाज़ार व्यवस्था में विज्ञापन वास्तव में ग्राहकों के लिए वस्तुओं की माँग सृजित करते है। जैसे घर में बनी नींबू की शिकंजी के स्थान पर 'तूफानी ठंडा थम्स अप या कोका कोला विज्ञापनों के द्वारा ही गर्मीमें प्यास को बुझाने का माध्यम बनता है। इसी प्रकार पहले डियोडोरेंट के बारे में 1919 तक कोई जानता भी नहीं था परन्तु जब एक विज्ञापन द्वारा यह संदेश दिया गया कि आपके शरीर से एक दुर्गंध निकलती है, जिसे महिलाएँ पसंद नहीं करती।

अतः ये डियोडोरेंट लगाओ, स्वयं महिलाएँ भी इसका प्रयोग करती हैं। इस विज्ञापन ने एक ओर नई वस्तु की ज़रूरत और माँग को पैदा किया तो दूसरी ओर इस विज्ञापन में भी 112% बढ़ोतरी हुई। लंदन टाइम्स के संपादक एफ़. पी. विशप ने उपभोक्तावाद को पैदा करने में सहायक विज्ञापन की इसी भूमिका को रेखांकित करते हुए कहा है कि "वह आवश्यक इच्छाएँ जगाता है, उपभोक्ता को गुमराह करता है तथा उपभोक्तावाद को बढ़ावा देता है।"

आज के युग में विज्ञापन का अपना एक विशाल साम्राज्य निर्मित हो चुका है, जिसका संचालक वह स्वयं है। बाज़ारवाद के रथ पर चढ़ कर वह उपभोग की नई–नई दिशाओं में बे–रोक–टोक संचरण करता है और समाज पर अपनी ताकत की छाप छोड़ता चलता है। जनसंचार माध्यम चाहे प्रिंट मीडिया हो या रेडियो, टी.वी. सभी विज्ञापन के प्रसारण का माध्यम बनते हैं। जब भी रेडियो टी.वी. चलता है उसके प्रत्येक कार्यक्रम के अनिवार्य अंग के रूप में विज्ञापन भी आते हैं। ये विज्ञापन गीत, रंग, चित्रा भाव, विचार, अभिनय सभी को अपने कलेवर में समेटे रहते हैं कि श्रोता/दर्शक उनके मोहजाल में फंस जाता है। ये विज्ञापन एक ओर हमारी रूचियों को निर्धारित करते हैं तो दूसरी ओर उनके अनुसार वस्तुओं का चयन करने के लिए दिशा निर्देश भी देते हैं।

विज्ञापन एक तरह से ग्राहक के मन–मस्तिष्क दोनों को अपने अधिकार में लेकर उसकी पसंद–नापसंद को प्रभावित करते हैं। दर्शनशास्त्र के प्रोफ़ेसर थॉमस गैरेट ने विज्ञापन की इस क्षमता के विषय में कहा था कि विज्ञापन के माध्यम से लुभाने की जो कोशिश की जाती हैं उसका मकसद सहज बुद्धि को दर किनार करना तथा तार्किततात को घटाना है।

यहाँ इस बात को समझना आवश्यक है कि वह कौन सी विशेषता है जो एक सामान्य ग्राहक को उपभोक्तावाद की ओर ले जाती है। उपभोक्ता ऐसे लोग या लोगों का समूह होता है जो किसी भी वस्तु का संभावित ग्राहक हो सकता है और जो किसी वस्तु का उपयोग कर सकता है। ये वस्तुएँ उनकी

ज़रूरत और इच्छाओं दोनों की पूर्ति करती है। इस प्रकार 'ज़रूरत' और 'इच्छा' दो महत्वपूर्ण कारक हैं जो व्यक्ति को वस्तु खरीदने की प्रेरणा देती हैं। यह प्रेरणा विशिष्ट वस्तु के प्रति व्यक्ति के मन में इतनी प्रबल इच्छा जाग्रत करती है कि वह उस वस्तु को पाने के लिए अपनी संपूर्ण ताकत लगा देता है। विज्ञापन की भाषा में इसे उपभोक्ता का व्यवहार कहा जाता है, जब इस इच्छा का प्रदर्शन समाज में सामूहिक रूप से होता है तो वह उपभोक्तावा कहलाता है।

मोबाइल फोन का प्रचलन इसी प्रकार की प्रक्रिया जनित उपभोक्तावाद का उदाहरण है जो उच्चवर्ग के बहुत अधिक व्यस्त लोगों द्वारा उपयोग किए जाने से आरंभ हुआ, परन्तु अनेक मॉडल बाज़ार में आ जाने से व्यक्तिगत ज़रूरत की हदों को पार कर हर व्यक्ति के हाथ में पहुँच गया है। आज मोबाइल फ़ोन उपभोक्तावाद का प्रतीक है। नए–नए फ़ीचर्स से सज्जित मोबाइल आज केवल संदशे सुनने या विचार विनिमय तक ही सीमित नहीं है वरन् उपभोक्ता को 'कर लो दुनिया मुटठी में' जैसी शक्ति का भी ऐहसास करता है।

तकनीक और माध्यमों के उदय से पहले किसी वस्तु के गुणों और उपयोगिता के सम्बन्ध में जानकारी देने या प्राप्त करने के लिए किसी बाध्य साधन या बहुत अधिक साज–सज्जा युक्त प्रस्तुति की आवश्यकता नहीं थी। परन्तु समय के बदलाव तथा उत्पादों की अधिकाध्कि संख्या ने बाज़ारवाद की जो व्यवस्था खड़ी की है उसमें 'सूचना ही शक्ति' बन कर उभरी है। बाज़ार की यह सूचना हमें विज्ञापन के द्वारा प्राप्त होती है। विज्ञापन ग्राहक को नहाने का साबुन नहीं रेशमी कोमल त्वचा का सपना भी बेचते हैं। इसी प्रकार चेहरे पर लगाने वाली क्रीम का विज्ञापन केवल चेहरे को ही नहीं संवारता उस लड़की के अन्दर आत्मविश्वास को भी जगाता है जो उसे एक बढ़िया नौकरी दिलाने में मदद करता है।

इस विज्ञापन को देख कर भारत जैसे देश की लाखों युवतियों में उस क्रीम को लगाकर विज्ञापन की लड़की के समान कुछ कर गुजरने की चाहत उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार से विज्ञापन ग्राहक की भावनाओं को जगाता है, उन पर मनोवैज्ञानिक दबाव बनाता है तथा कल्पना और आभासी जगत की एक ऐसी तस्वीर खींचता है कि उपभोक्ता ज़रूरत न होने पर भी उस वस्तु को खरीद लेता है।

यहाँ एक बात स्पष्ट है कि उपभोक्तावाद वैश्वीकरण और बाजारीकरण का मुख्य तत्व है। उपभोक्तावाद को फैलाने का प्रमुख साधन विज्ञापन है। भारत में भूमंडलीकरण और उदारवाद के कारण अपना वर्चस्व स्थापित करने वाला उपभोक्तावाद एक ऐसी आर्थिक प्रक्रिया का परिणाम है जो प्रत्येक चीज़ को उपभोग के योग्य मान कर चलती हैं आवश्यकता केवल इस बात है कि उस वस्तु के गुणों के बाज़ार में इस प्रकार प्रचारित किया जाए कि वह अपने आपको पूरी तरह स्थापित कर सके। हल्दी चंदन प्राचीन काल से ही मानव त्वचा को देखभाल के लिए बहुत अच्छे माने जाते थे परन्तु हल्दी, चंदन युक्त आयुर्वेदिक क्रीक ने बाज़ार में इस प्रकार इन गुणों का बखान किया कि उपभोक्ता बाज़ार में इन्हें एक नवीन और विशिष्ट उत्पाद के रूप में स्थापित होने का अवसर मिल गया।

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

विज्ञापनों द्वारा फैलाए गए इस उपभोक्तावाद की भूल प्रवृत्ति व्यावसायिक है। इसीलिए यह मनुष्य की प्राकृतिक और स्वाभाविक ज़रूरतों की परिधि से आगे बढ़ कर उन वस्तुओं को योजनाबद्ध तरीके से उसके जीवन में आरोपित करता है जो प्रचार के द्वारा उसके लिए ज़रूरी बना दी गई हैं।

भारत जैसे विकासशील देश में यद्यपि उपभोक्तावाद के परिणामस्वरूप आर्थिक गतिविधियों को बढ़ाने, रोज़गार के नये–नये अवसर उपलब्ध कराने तथा लोगों की आय में वृद्धि करने में सहायता मिली है, किन्तु मानवमूल्यों, नैतिकता, ईमानदारी, त्याग आदि जैसे गुणों का तेजी से "ह्रास हुआ है। ओर लालच और प्रतिस्पर्द्धा की भावना को बढ़ावा देता है साथ ही आधुनिक जीवन शैली की अपनाने के लिए प्रेरित करता है। इसी जीवन शैली का परिणामस्वरूप एक ऐसे वर्ग का उद्‌भव हुआ है जिनके लिए उपभोग ही जीवन है।

उनके लिए सामाजिक प्रतिष्ठा का आधार बाज़ार में उपलब्ध नये–नये उत्पादों का उपयोग करना है जो सामान्य तौर पर उनकी ज़रूरतों को पूरा करने का साधन नहीं है परन्तु अन्य लोगों के सामने खुद को ऊँचा दिखाने, आधुनिक बनने और सम्मानीय स्थान प्राप्त करने की उनकी मनोवृत्ति का प्रदर्शक है। वस्तुओं के संकलन और संग्रह की प्रवृत्ति भ्रष्टाचार और अपराध को बढ़ावा देती है। अतः आवश्यक है कि उपभोक्तावाद को नियन्त्रित किया जाए।

उपभोक्तावाद का एक और नकारात्मक पहलू यह भी है कि यह लोगों का भावनात्मक शोषण करता है और समाज में जिन्हें सॉफ्ट टारगेट माना जाता है, जैसे बच्चे और महिलाएँ उन्हें अपना निशाना बनाता है। कार के विज्ञापन में कम नंबर लाने वाला बच्चा किस चतुराई से अपने पिता का ध्यान कार की स्मूथ ड्राइव की ओर मोड़ देता है, यह अन्य बच्चों के मनोविज्ञान को भी प्रभावित कर सकता है। इसी प्रकार 'उसकी साड़ी मेरी साड़ी से ज्यादा सफ़ेद क्यों' कपड़े धोने के साबुन के विज्ञापन की पंचलाइन ईर्ष्या के भाव को उत्पन्न करती है।

फास्ट फूड को खाते हुए अत्यन्त प्रसन्न और उत्साहित दिखाई देने वाले बच्चों के खिले हुए चेहरे विज्ञापन से बाहर आकर वास्तविक जगत के बच्चों को भी ऐसी चीज़ें खाने की ही प्रेरणा देते हैं, साथ ही उन्हें घर के खाने से विमुख भी करते हैं। विज्ञापनों में महिलाओं का उपयोग व्यक्ति के रूप में नहीं वरन् सामान खरीदने की प्रेरणा देने वाले साधन के रूप में किया जाता है। उसे एक सुन्दर मूर्त्ति के रूप में सजा सँवार कर प्रस्तुत किया जाता है, जो उसकी रोज़मर्रा की जिंदगी की छवि से पूरी तरह अलग छवि को प्रस्तुत करता है।इस प्रक्रिया में विज्ञापन कंपनियाँ कभी–कभी मर्यादा की सारी सीमाओं को तोड़कर महिलाओं को सेक्स ऑब्जेक्ट या अश्लील रूप में चित्रित करते हैं।

यह वास्तव में महिलाओं का शारीरिक दृष्टि से शोषण है और एक व्यक्ति के रूप में उनकी छवि को नकारात्मक रूप में चित्रित करना भी। परन्तु उपभोक्तावाद व्यावसायिक हितों के चलते अधिक से अधिक मुनाफ़ा प्राप्त करने के लक्ष्य को प्राप्त करने की दौड़ में इस प्रकार के नैतिक सवालों की तरफ़ ध्यान ही

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

नहीं देता है। उपभोक्तावाद का जबरदस्त दबाव हमारे समाज और सांस्कृति पर पड़ता है और सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन की प्रेरित करता है।

अंततः यह कहना सही है कि विज्ञापन ने उपभोक्तावाद को बढ़ावा दिया है। उत्पादों की बढ़ती संख्या ने लोगों के दिमाग को भ्रम की स्थिति में डाल दिया है। उसे दिशा–निर्देश देने का काम विज्ञापनों द्वारा किया जा रहा है। वहीं यह सुनिश्चित करते हैं कि मनुष्य किस साबुन, टूथपेस्ट, मक्खन, आटा, चावल या नमक को अपनाए और प्रयोग करे। टीवी अखबार, इंटरनेट, सोशलमीडिया आदि के द्वारा ये विज्ञापन सामान्य लोगों के घटों के अन्दर पहुँच गए हैं। आज बाज़ार में उपलब्ध हर चीज़ विज्ञापन की परिधि में आ चुकी है। विज्ञापनों ने मानव की सोच को इस प्रकार अपनी जकड़ में लिया है कि उन चीज़ों को भी जीवन में आवश्यक बना दिया है कि उन चीज़ों को भी जीवन में आवश्यक बना दिया है जो सामान्य स्थिति में उसके उपयोग की नहीं है। उत्पाद के गुण–दोष की परख का नियामक आज विज्ञापन ही है। कहा जा सकता है कि आज विज्ञापन की दुनिया में उपभोक्तावाद अपनी पूरी शक्ति के साथ फल–फूल रहा है।

संदर्भ

1. उपभोक्ता संस्कृति और बाज़ारवादः ललित सुरजन
2. संस्कृति का संकट और जनसंचार माध्यम (नव उन्नयनद्ध): डा. विनीता कुमारी
3. आलोचकीयः विज्ञापन और उपभोक्तावाद (अपनी माटी): मीना
4. विज्ञापन और ब्रांडः डा. संजय सिंह बघेल
5. एडवरटाइज़िंग–प्रिंसिपल एण्ड प्रेक्टिसः सांद्रा मोरियती, नैन्सीमिशेल, विलियम वेल्स

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)